स्वदेश-समर्पित, त्याग और तलवार के धनी-

भामाशाह

एवम्

ठा. ताराचन्द

डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर
पीएच डी (इतिहास)
पीएच डी (आयुर्वेद)

श्री ताराचन्दजी कावेडिया स्मारक संघ
सादडी (जिला पाली) राजस्थान

प्रकाशक—
श्री ताराचन्दजी कावेडिया स्मारक संघ
सादडी, जिला पाली
राजस्थान

प्रथम संस्करण, 1987
(वि सं २०४३)

मूल्य — छत्तीस रुपये

मुद्रक
प्रोम प्रिन्टस
36 भूतमहल उदयपुर 313001

BHAMASHAH AND THAKUR TARACHAND (History)
by Dr Rajendra Prakash Bhatnagar

BHAMASHAH
AND
THAKUR TARACHAND

by

Dr Rajendra Prakash Bhatnagar
Ph D (History)
Ph D (Ayurved)

SHRI TARACHAND KAVEDIA SMARAK SANGH
Sadri (Distt Pali) Rajasthan

समर्पण



राष्ट्रवीर प्रात स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम)



समर्पण

जो स्वयं स्वतंत्रता, स्वदेश प्रेम और स्वदेशाभिमान के साक्षात
मूर्तरूप थे तथा जिनके अपूर्व त्याग शौर्य और बलिदान के
उच्च आदर्शों ने भामाशाह एवं ताराचन्द जैसे अनेक
'त्याग और तलवार के धनी' महापुरुषों का निर्माण
किया और उन्हें नित्य प्रेरणा दी उन

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप

की
पावन स्मृति को
यह कृति
सादर-साभार समर्पित

०

डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर

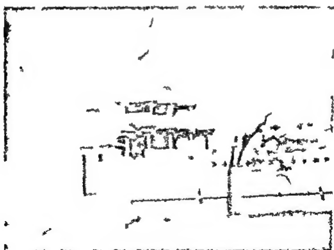


भामाशाह महाराणा प्रताप को धन समर्पित करते हुए ।



रणथम्भोर का अजेय दुग जहा शाह भारमल्ल दोघकाल तक किलदार रहा

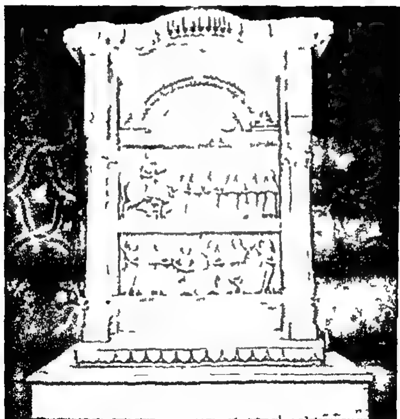
भारत के सब गढन म माटा रणथम्भार ।
तीरथ म चित्ताड बडा उदगम जौहर थम्भार ॥



सिहवाहिनी महिषासुरमर्दिनी चण्डिका देवी का मदिर जावर । इसका निर्माण वसतगढ के महत्तर जेतक ने सवत्त 703 (646 ई) मे कराया था। काला तर मे इसका जीर्णोद्धार भामाशाह ने कराया।



भामाशाह और ठा ताराचन्द, मालवे की लूट से प्राप्त 25 लाख रुपये
और 20 हजार अशर्फिया महाराणा प्रताप को चूलिया
(ईडर) गाव मे भेट करते हुए ।



ताराचन्द छत्री का अन्तवर्ती सती–शिला–फलक

'वीरन के आकाश मे प्रगट भये थो ताराचन्द ।
उदित देख शशि समनिशा पातल जिय आनन्द ॥

आमुख

डॉ गोपीनाथ शर्मा

एम ए, पीएच डी डी लिट

निदेशक, राजस्थान इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च

एवम

मानद निदेशक, सेन्टर फार राजस्थान स्टडीज

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

नागरिक जीवन और राज्यसत्ता के समन्वय में प्रशासन और राष्ट्रहित की भावना का बड़ा महत्व है। इस पुनीत भावना के अनुसार ही प्रशासक का व्यक्तित्व एक प्रेरक लक्ष्य बनता है। इसके अभाव में व्यक्ति का भौतिक व निजी स्वार्थ ही लक्ष्य के रूप में शेष रह जाता है। वास्तव में प्रशासन राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था का सैनिक हो या असैनिक हो तन्त्र है और अधिकारी उसके यन्त्र होते हैं। ऐसे अधिकारी राज्य या राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में शासन की व्यवस्था करते हैं। विजय, सफलता और उन्नति इस सत्य को इतिहास द्वारा प्रमाणित करते हैं।

यह प्रशासन के आदर्श का प्रतिनिधित्व हम भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों में पाते हैं, जिन्होंने प्रशासक व सैनिक की हैसियत से मेवाड़ की निष्ठापूर्वक सेवा की। सेवा लाभ या दम्भ से कभी न जुड़ी क्योंकि उसमें बलिदान त्याग और निःस्वार्थ के तत्व बड़े बलवान् थे। भामाशाह जहाँ हल्दीघाटी में तलवार चला सकते थे वे प्रशासन द्वारा उन कष्टों के दिनों में अपने स्वामी प्रताप के राज्य को सुदृढ़ और सुशासित रूप में उभार सके। भामाशाह ने अपने पिता की परम्परा की प्रतिष्ठा को अधिक प्राणवान् बनाया जिसके फलस्वरूप उनके वंशज भी उनके अनुसार राज्य के प्रधान बने रहे। इस कावड़िया परिवार के हाथ में पीढ़ियों तक प्रधानता बना रहना कोई साधारण घटना नहीं थी। समय समय राज्य के लिए धन जुटाना, सेना का संचालन करना प्रजा को धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से सन्तुष्ट रखना, ऐसी उपलब्धियां थीं जिन्हें शायद आगे आनेवाले अन्य वंशों के प्रधान नहीं अर्जित कर सके। मेवाड़ के गौरव, प्रतिष्ठा और शासन व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखने में भामाशाह का पूरा योगदान था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसी परिपाटी को इनके भाई ताराचन्द वंशज जीवाशाह और अक्षयराज ने अपनी कार्य-कुशलता से खूब निभाया। स्थापत्यकला में ताराबावड़ी अपने ढंग की अनूठी है जिसके साम्य की बावड़ी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

हमारे विद्वान् लेखक डा राजेन्द्रप्रकाश भटनागर साहब बधाई के पात्र हैं जिन्होंने समसामयिक ताम्रपत्रों शिलालेखों, परवाना पट्टावलिया, साहित्यग्रन्थों तथा सन्दर्भ ग्रन्थों का उपयोग कर भामाशाह के व्यक्तित्व को बड़े शोधपूर्ण दृष्टि से उभारने म तथा उनके अनुज ताराचन्द व वंशधरों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने म स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में कई अज्ञात घटनाएं हमारे सामने आई हैं। सम्भवत मेरी जानकारी म भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध म ऐसा शोधपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है जिसे प्रमाणों व तर्कों से सजाया गया हो। कई घटनाएं जो इसमें समावेशित की गई हैं वे इस महान् आत्मा के जीवन का दर्पण हैं। इस ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य के शोध का आधार बनेगा इस आशा के साथ लेखक महोदय का मैं पुन अभिनन्दन करता हू।

उदयपुर
बसन्तपचमी 3 1 87

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ के महाराणा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने देशभक्ति कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निश्चित कर लिया है। प्रताप के व्यक्तित्व और आदर्श के अनुरूप ही उनका प्रधान भामाशाह हुआ। प्रताप के विभिन्न राजनैतिक प्रशासनिक और प्रबन्ध सबंधी कार्यों में भामाशाह का भी विशिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियों पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलोचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजाओं के अतिरिक्त शासन और समाज के अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के कृतित्व विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता को प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अधूरा रहा है।

ग्रन्थ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल्ल के विषय में विवरण काफी उपयोगी है। भारमल्ल ने रणथम्भोर की किलेदारी की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेवाड़ राज्य के प्रति जो निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की, उस संदर्भ में दिया गया ऊहापोहरूप विवेचन नये तथ्यों को प्रकट करता है।

लेखक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता हल्दीघाटीयुद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इससे सम्बन्धित अन्य घटनाओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। मेवाड़ में नयी व्यवस्था प्रबन्ध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि तथ्यों को युक्तिपुरस्सर सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो सर्वथा स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में उसके अनुज ताराचन्द सबंधी उपलब्धियों पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हल्दी घाटी युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उसे प्रताप ने गोड़वाड़ का हाकिम बनाया था। उसने सादड़ी में रहते हुए न केवल सैनिक अभियानों का संचालन किया अपितु उसने वहां मुगल दरबार की कला पर संगीत कला और साहित्य को प्रश्रय देकर उनकी उन्नति में रुचि ली थी। वहां उसके द्वारा किए गए निर्माण कार्य अब तक विद्यमान हैं। अब तक उपलब्ध इतिहासों में ताराचन्द का व्यक्तित्व इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवाशाह और उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अक्षयराज मेवाड़ का 'प्रधान' नियुक्त हुआ। अक्षयराज द्वारा डूंगरपुर पर आक्रमण का वर्णन यहां प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

हमारे विद्वान् लेखक डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर साहब बधाई के पात्र हैं जि हो
समसामयिक ताम्रपत्रो शिलालेखो, परवानो पट्टावलियो, साहित्यग्रन्थो तथा सन्दर्भ
ग्रन्थो का उपयोग कर भामाशाह के व्यक्तित्व को बडे शोधपूर्ण दृष्टि से उभारने म तथ
उनके अनुज ताराचन्द व वशधरो के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने म स्तुत्य प्रयत्न किय
है। इस पुस्तक से कई अज्ञात घटनाए हमारे सामने आई है। सभवत मे
जानकारी म भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियो के सम्ब ध म ऐसा खोजपूर्ण ग्र
प्रकाशित नही हुआ है जिसे प्रमाणो व तर्कों से सजाया गया हो। कई घटनाए ज
इसम समावेशित की गई हैं वे इस महान् आत्मा के जीवन का दपण हैं। इस ग्र
का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य के शोध का आधार बनेगा इस प्रशस
साथ लेखक महोदय का मैं पुन अभिनन्दन करता हू।

उदयपुर
बसन्तपचमी 3 1 87

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ के महाराणा प्रताप का नाम अमर है। उन्होंने देशभक्ति, कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निश्चित कर लिया है। प्रताप के व्यक्तित्व और आदर्श के अनुरूप ही उनका प्रधान भामाशाह हुआ। प्रताप के विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक और प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों में भामाशाह का भी विशिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियों पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलोचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजाओं के अतिरिक्त शासन और समाज के अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के कृतित्व विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता को प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अधूरा रहा है।

ग्रन्थ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल के विषय में विवरण काफी उपयोगी है। भारमल ने रणथम्भोर की किलेदारी की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेवाड़ राज्य के प्रति जो निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की उस सबंध में दिया गया ऊहापोहरूप विवेचन नये तथ्यों को प्रकट करता है।

लेखक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता, हल्दीघाटी युद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इससे सम्बन्धित अन्य घटनाओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। मेवाड़ में नयी व्यवस्था प्रबन्ध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि तथ्यों को युक्तिपुरस्सर सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो सर्वथा स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में उसके अनुज ताराचन्द सबंधी उपलब्धियों पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हल्दीघाटी युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उसे प्रताप ने गोड़वाड़ का हाकिम बनाया था। उसने सादड़ी में रहते हुए न केवल सैनिक अभियानों का संचालन किया अपितु उसने वहां मुगल दरबार की तर्ज पर संगीत कला और साहित्य को प्रश्रय देकर उनकी उन्नति में रुचि ली थी। वहां उसके द्वारा किये गये निर्माण कार्य अब तक विद्यमान हैं। अब तक उपलब्ध इतिहासों में ताराचन्द का व्यक्तित्व इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवाशाह और उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अक्षयराज मेवाड़ का प्रधान नियुक्त हुआ। अक्षयराज द्वारा डूंगरपुर पर आक्रमण का वर्णन यहां प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस कृति में भामाशाह और ताराचन्द के इतिहास पर सर्वांगीण रूप में प्रकाश डाला गया है। नवीन घटनाओं और तथ्यों को इतिहासपरक तर्क शैली में प्रस्तुत कर अपनी मान्यताओं को प्रकट करने में यह रचना विशेष रूप से ग्राह्य बन गयी है।

इस ग्रंथ के लेखक डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर बधाई के पात्र हैं। आशा करता हूँ कि वह इसी प्रकार शोधपूर्ण अन्य ग्रन्थों को लिखकर इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ियों को प्रकट करने में योग देंगे।

डॉ वी एस माथुर
आचार्य इतिहास विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राज)

दो शब्द

अपनी अस्मिता और गौरवपूर्ण इतिहास को जानने और समझने की ललक सभी सभ्य समाजों में होती है। सामाजिक संक्रान्ति काल में तो यह ललक अधिक तीव्र हो जाती है। दरअसल इसी ललक से हम इतिहास के फलक में वर्तमान को विभिन्न कोणों तथा तरीकों से देख सकते हैं लेकिन इसे देखने और समझने में हमारी दृष्टि एकांगी तथा पूर्वाग्रही नहीं हो, यह महत्वपूर्ण है।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्राट हर्षवर्द्धन (606-647 ई.) के पश्चात भारतवर्ष में राजनीतिक दृष्टि से केन्द्रीय सत्ता के अभाव में टूटन और विघटन की ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न हुई कि विदेशियों का यहां आकर अपार सम्पत्ति को लूटने और अपना शासन स्थापित करने में विशेष अवरोध नहीं आया। मध्ययुगीन इस राजनीतिक पराजय का मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता का अभाव, राजनीतिक चेतना की कमी, कुशल संगठनशक्ति का अभाव और क्षुद्र स्वार्थों का प्राबल्य रहा। विदेशी आक्रान्ताओं और भारतीयों के मध्य सत्ता संघर्ष होता रहा। जन नेताओं के ईमानदार प्रयत्नों की कमी भी इसका एक कारण रही। इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि जब भी राष्ट्रीय एकता के लिए प्रतिबद्ध होकर जनता और शासकों ने मिलकर युद्ध लड़ा वहां विजयश्री ही प्राप्त हुई। इतिहास में उन्हीं जननेताओं को याद किया जाता है जिन्होंने राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता और गौरव के लिए त्याग और बलिदान किए हों। वे ही महापुरुष इतिहास के धवल नक्षत्र हैं और अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरक स्रोत हैं। समाज और राष्ट्र के विकास, समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों का योगदान उल्लेखनीय रहता है।

इतिहास मात्र तिथि-पत्रक नहीं है, वह हमारी सांस्कृतिक राजनीतिक जीवन धारा, सामाजिक संस्कृति और हमारे महापुरुषों की गाथा भी है। हमारा सांस्कृतिक सामाजिक धरोहर को समझने परखने तथा अस्मिता की पहचान की प्रक्रिया भी है। इन महापुरुषों की जीवनपद्धति, उनके क्रियाकलाप हमारे लिए आदर्श और प्रेरक हैं। इसीलिए इतिहास व संस्कृति के यथार्थ और सन्तुलित अध्ययन का प्रयास जरूरी है। इतिहास ग्रंथों, रुक्कों, दानपत्रों, प्रशस्तियों तथा साहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन चिंतन कर हम विश्लेषण करते हैं। यह कठिन श्रम साध्य व समय साध्य कार्य है। तात्कालिक लाभ और यश से दूर रहकर रुचि और निष्ठा से ही यह प्रयत्न सम्भव हो सकता है। इस दृष्टि से डा. राजेन्द्र प्रकाश भटनागर की यह कृति भामाशाह और ताराचन्द' उल्लेखनीय है। डा. भटनागर क्षमतावान शोधक और अपने विषय में दक्ष विद्वान हैं। इस कृति में डा. भटनागर ने भामाशाह व ताराचन्द के संदर्भ में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का कुशलता से समाकलित किया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि राजपूत शासन में वैश्य और कायस्थ योद्धा के साथ कुशल संगठक तथा प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। कीर्तिपुरुष महाराणा प्रताप के साथ दानवीर भामाशाह का स्मरण इतिहास का एक अकाट्य प्रमाण है। वैश्य बंधु भामाशाह और ताराचन्द भारमल के पुत्र थे और प्रताप के मित्र। भारमल कावडिया गोत्र के ओसवाल जैन थे। भारमल स्वयं वीर व कुशल प्रशासक थे तथा लम्बे समय तक रणथम्भोर के किलेदार रहे हैं। राणा संग्रामसिंह (सांगा) ने अपनी पत्नी रानी कर्मवती तथा पुत्र विक्रमादित्य व उदयसिंह को रणथम्भोर भेज दिया था। भारमल्ल राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात राजपरिवार के साथ चित्तौड़ आ गए थे। उदयसिंह ने भारमल्ल की कर्तव्यशीलता व विश्वसनीयता व कूटनीतिज्ञता के कारण एक लाख का पट्टा देकर सामन्त बनाकर सम्मानित किया था। अकबर ने वि. सं. 1624 में चित्तौड़ पर हमला किया तब भारमल चित्तौड़ ही रहे और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को उदयसिंह के साथ कुम्भलगढ़ भेज दिया था।

भामाशाह राणा प्रताप से सात वर्ष छोटे थे और ताराचन्द भामाशाह से चार वर्ष। भामाशाह के चारित्रिक गुणों और कार्यों का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है। उनके लघु भ्राता ताराचन्द का योगदान भी रेखांकित किया जाता है। मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था को क्रियान्वित करने में प्रधान भामाशाह का सराहनीय योगदान रहा है। वे अनुभवी और कुशल प्रबंधक थे। देशभक्ति और स्वामीभक्ति के लिए *भामाशाह एक दृष्टान्त हैं।* सत्ता का प्रलोभन उन्हें अपने कर्तव्य से डिगा नहीं सका। मुगलों से युद्धों के बाद से मेवाड़ की आर्थिक व सैन्य स्थिति बिगड़ गई राजकोष खाली हो गया धन जन की हानि हो गई और ऐसी विषम स्थिति में भामाशाह ने अपने पास का सम्पूर्ण धन महाराणा प्रताप को मेवाड़ की अस्तित्व रक्षा के लिए अर्पित कर दिया। त्याग व दान की भामाशाह जीवन्त मूर्ति थे। दानी भामाशाह को मेवाड़ हमेशा याद करता रहेगा। भामाशाह के सदृश उनके लघु भ्राता ताराचन्द वीर व कुशल प्रशासक थे। गोडवाड़ प्रदेश के गवर्नर नियुक्त होने के पश्चात ताराचन्द ने अपने क्षेत्र के समुचित विकास व उन्नयन की ओर ध्यान दिया। ताराचन्द की स्थापत्य साहित्य संगीत तथा ललित कलाओं के प्रति गहरी रुचि थी। उनके आश्रय में *कई संगीतज्ञ नर्तक साहित्य प्रेमी व कलाप्रेमी रहे हैं। उस अवसरवाद के काल में* ललितकलाओं की ओर ध्यान देना तथा प्रोत्साहित प्रेरित करना एक महत्वपूर्ण बात थी। दुर्भाग्य से ताराचन्द की मृत्यु 44 वर्ष की आयु में ही हो गई।

वस्तुतः जैन धर्मावलम्बी उदारधार्मिक सहिष्णु भामाशाह और ताराचन्द ने मेवाड़ के गौरव और सम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपनी कारगर भूमिका का निर्वाह किया है।

ऐसे कीर्तिपुरुषों पर रचनात्मक लेखन कम निःसंदेह एक प्रशंसनीय कार्य है। इन महान विभूतियों की जीवन गाथा प्रेरणा और प्रोत्साहन देती है व पथ प्रदर्शक भी है। डा. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर ने इनके समग्र जीवन को समाकलित कर गौरवपूर्ण व श्रमसाध्य कार्य किया है। कृति का परिशिष्ट भी महत्वपूर्ण व विशिष्ट है। डा. भटनागर की भाषा शैली निःसन्देह प्रभावित करती है। उनके सरल शांत व धर्मधर्मी स्वभाव की छाप इस कृति में है। राष्ट्रीय अस्मिता तथा गौरव के लिए मधपरस वर्तमान पीढ़ी के लिए यह कृति प्रेरक होगी, ऐसी आशा है।

विश्वास है सुधिजन इस कृति का हार्दिक स्वागत करेंगे।

उदयपुर
दि. 10 फरवरी, 87 ई.

डॉ. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना
सचिव
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर।

शुभसम्मति

पृथ्वीसिंह मेहता
विद्यालंकार
लेखक—हमारा राजस्थान (अर्थात् आधुनिक राजस्थानी भाषा भाषी प्रदेश का ऐतिहासिक पर्यालोचन), बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन

भारतीय इतिहास में प्रायः राजा महाराजाओं के कार्यों का ही वर्णन होता रहा है। ऐसे बहुत कम व्यक्तित्व हैं जिनका उत्सर्ग राजा महाराजाओं की यश गाथाओं को पार कर जनता तक पहुँच पाया हो। मेवाड़ के भामाशाह उन थोड़े से व्यक्तियों में प्रथम हैं जिन्होंने अपने अमित पराक्रम असाधारण राजनीतिक सूझ बूझ अपने स्वामी (अपने राज्य की प्रभुशक्ति के प्रति) भक्ति और आत्म त्याग का ऐसा उदाहरण पेश किया जो भारतीय जनता के हृदय में आज उदाहरण रूप धारण कर लोगों को प्रेरणा देता रहता है। स्वाधीनमीक्षितों पर सब कुछ बहाने वाले। धनियों का ज मदाता कुल हो यही हमारा। (गुरुकुल कांगड़ी में गाये जाने वाले कुलगीत की एक कड़ी) और जो देश के धनिकों का आदर्श मार्ग बन गया सा लगता है।

लेकिन दुर्भाग्य से भामाशाह के जीवन पर अभी तक कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री भारत की या किसी भी अन्य देशी विदेशी भाषा में उपलब्ध नहीं थी। मेरे मित्र श्री राजेन्द्रप्रकाश जी भटनागर ने अपनी इस छोटी सी पुस्तिका में पहली बार उनके जीवन पर विधिवत रूप से प्रकाश डालने का जतन किया है और साथ ही भामाशाह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी उन्होंने पहली बार प्रस्तुत किया है जिसके लिए हम सब मेवाड़ी लोग उनका आभार मानते हैं और आशा है कि आगे आने वाले दूसरे लोग भी उस ऐतिहासिक महापुरुष तथा अन्य ऐसे ही व्यक्तियों के जीवनों पर इसी दिशा में प्रकाश डालने का जतन करेंगे, जिससे राजस्थान इतिहास का जो स्वरूप जनता के सामने आता रहा है वह केवल एक जाति या वर्ग विशेष का स्तुति गान न होकर राजस्थान की सारी जनता के पराक्रमों और क्रियाकलापों का क्रमिक और संतुलित इतिहास बन सके।

शिवकुटी उदयपुर
6 2 87

पृथ्वीसिंह मेहता

प्रस्तावना

इतिहास का निर्माण राजा और प्रजा के द्वारा होता है। केवल घटनाओ
्रम ही इतिहास नही है। इतिहास म समाज के हर क्षेत्र की उन्नति और
ननि के क्रम को स्वीकार किया जाता है। पूण इतिहास वही है जिसमे
सकवग के साथ शासितवग क सब प्रकार के योगदान को क्रमिक रूप मे प्रद
त किया जाता है। जब शासकवग का प्रमुत्व रहा उनके काल और सरक्षण
लिखा गया इतिहास एकाङ्गीण और उन तक ही सीमित रहा परतु देश की
तन्त्रता के पश्चात शासन विशेष के साथ जन प्रतिनिधियो द्वारा अर्जित की गई
लब्धियो को सर्वाङ्गीण रूप से प्रस्तुत करन की आवश्यकता अनुभव की जान
ी है, जिनस समाज और देश के किसी न किसी क्षेत्र पर प्रभाव पडे बिना नही
सका। समाज के ऐस महत्वपूण व्यक्तियो के राजनतिक सामाजिक, धार्मिक
र्थिक कला,विज्ञान आदि विभिन्न परिवेशो म समुचित मूल्याकन को समसाम
क प्रमाणो और साक्ष्यो के माध्यम स प्रकट करन स ही इतिहास पूण बन
ेगा। एसा ही इतिहास राष्ट्रीयता को जागत कर सकता है समाज को नया
ीवन, प्रेरणा और उदबोधन दे सकता है। हर देश और प्रदेश के एसे व्यक्तित्वो
ा मूल्याकन भी तत्कालीन परिस्थितियो तथा नतिक व सामाजिक मूल्यो और
ान्यताओं के आधार पर ही किया जाना चाहिए इतिहासकार यह न भूले कि
ाल-काल परिस्थितिवशात य मूल्य और मान्यताए हमेशा परिवर्तित होती रही
। वतमान परिस्थितियो और विचारो के आधार पर आज से दो-तीन सौ वप
थवा अधिक पुराने व्यक्तियो के कृतित्व को आका नही जा सकता। एसा करना
हुत ऐतिहासिक भूल होगी।

इतिहास की विभिन्न कडियो को बटोर कर अब नवीन-स्वदेशीय इतिहास
निर्माण की आवश्यकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का आज उसके कृतित्व से ही
ल्याकन किया जा सकता है।

पुराने समय म राजा और प्रजा के लिए उसका राज्य ही राष्ट्र था, उनके
ारे क्रियाकलाप उसके लिए ही समर्पित होते थ। भारतज्य के अन्दर मातभूमि
ा सकेत उसके राज्य स ही किया जाता था किन्तु भारत के बाहर वह भारत
ासी के रूप म समझा जाता था।

हमारी परम्पराए राजनीति और समाज के हर क्षत्र म, निश्चित रूप स
नेक आघातो व्यवधानो और अन्तरालो के बावजूद अविरल रही है। अत
नका मूल खोज पाना बहुत कठिन है फिर भी व्यक्ति विशेष क क्षेत्र विशेष म
ोगदान को प्रकट किया जाना सुगम है।

मेवाड़ इतिहास में शासकों के अतिरिक्त महापुरुषों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में देश काल परिस्थिति के अनुरूप महत्वपूर्ण योगदान किया। ऐसे महापुरुषों में भामाशाह और उनके भाई ताराचन्द का नाम अग्रपंक्ति में सम्मिलित किया जा सकता है। इन बन्धुओं और उनके वंशजों के कार्यों पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एक विवेचन, सर्वेक्षण और मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस कृति में किया गया है।

इस कार्य के लिए मुझे समय समय आदरणीय श्री बलवन्तसिंह जी मेहता रैनबसेरा उदयपुर से प्रेरणा और सुझाव प्राप्त होते रहे हैं अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे हमेशा उनका स्नेह मिलता रहा है।

पुस्तक का आद्योपान्त आलोचन कर उस पर 'आमुख' लिख देने की कृपा प्रसिद्ध इतिहासविद परम सम्माननीय श्री डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने की है एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में इतिहास विभाग के आचार्य श्री डा. बी. एस. माथुर साहब ने ग्रन्थ पर प्राक्कथन एवं श्री डॉ. लक्ष्मीनारायण जी नन्दवाना निदेशक राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर ने समीक्षात्मक दो शब्द लिखकर महती कृपा की है। इसके लिए लेखक उनका आभारी है। आदरणीय श्रीमान पृथ्वीसिंह जी मेहता ने कृपापूर्वक अपनी 'सम्मति' लिखकर मुझे कृतार्थ किया है। उसके लिए मैं हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशक और मुद्रक महोदय को भी मैं साधुवाद देता हूँ जिनकी रुचि और परिश्रम से इसका प्रकाशन हुआ है।

उदयपुर
13 फरवरी, 1987

डा. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर

विषय-सूची

7 परिशिष्ट

1 पुरालेखीय और साहित्यिक प्रमाण संग्रह
    1 ताम्रपत्र
    2 शिलालेख
    3 परवाना
    4 पट्टावली
    5 साहित्यिक ग्रन्थ
2 इतिहासकारों और साहित्यकारों की दृष्टि में भामाशाह
3 सहायक ग्रन्थ सूची

कुल पृष्ठ संख्या 16 + 104

संकेत - सूची

वी वि	—	वीरविनोद
राज का इति	—	राजपूताने का इतिहास
उद का इति	—	उदयपुर राज्य का इतिहास
एनल्स	—	एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटिज ऑफ राजस्थान
रा प्रा वि प्र	—	राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
Annals	—	Annals and Antiquities of Rajasthan

1. विषय-प्रवेश

इतिहास का निर्माण महापुरुषों से होता है। महापुरुषों के व्यक्तित्व और कृतित्व न केवल समकालीन समाज, प्रदेश और राष्ट्र को अनुप्राणित करते हैं अपितु युग पर्यन्त प्रेरणा के स्रोत बने रहते हैं। समाज और राष्ट्र के विकास, समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों के किसी न किसी रूप में योगदान को कदापि भुलाया नहीं जा सकता।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य रहा है कि राजपूत शासक उत्तम कोटि के योद्धा अवश्य थे परन्तु प्रायः अच्छे संगठनकर्ता और प्रशासक नहीं थे। राजपूत-इतिहास के पीछे मस्तिष्क मुख्यतया कायस्थों और वैश्यों तथा आंशिक रूप से ब्राह्मणों द्वारा प्रदान किया गया।[1] राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक ऐसे राजपूतेतर महान् व्यक्तियों के जीवन और क्रियाकलापों को उजागर नहीं किया जाता। इनके सम्बन्ध में शोध खोज इनके पारिवारिक संग्रहों के अतिरिक्त राजकीय संग्रहों में उपलब्ध दस्तावेजों, विज्ञप्तियों, ख्यातों, बहियों तथा तत्कालीन इतिहास ग्रन्थों, प्रशस्तियों, दानपत्रों, रुक्के-पट्टे-परवानों के माध्यम से की जानी चाहिये। राजपूत राज्यों का वास्तविक और व्यावहारिक रूप में प्रशासन इन राजपूतेतर व्यक्तियों के हाथ में ही रहा। राजस्थान के इतिहास की महत्त्वपूर्ण परम्पराओं और कड़ियों का निर्माण ऐसे ही पुरुषों के द्वारा हुआ है इसमें दो राय नहीं। राजपूत राज्यों में 'प्रधान' का सर्वोच्च पद सदैव या तो किसी कायस्थ को अथवा

1 डॉ० कालिकारंजन कानूनगो ने उचित ही लिखा है —

'The Rajput was essentially a grabbing warrior, and no organizer or administrator. The brain behind the Rajput history was supplied mostly by the Kayasth and the Vaishya and partly by the Brahman. A history of Rajputana worthy of the name cannot be written till further researches are made into the family records of these non-Rajputs, who practically ruled the Rajput principalities and manned their whole civil administration. They have a legitimate share of the glory that history has hitherto assigned to the Rajput exulusively. (Studies in Rajput History P. 50)

किसी वैश्य को सौंपा जाता रहा। ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता जिसम किसी राजपूत को यह पद दिया गया हो। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रशासनिक पदो 'कामदारो' के पदो पर भी ये लोग नियुक्त किये जाते रहे। इसके दो मुख्य कारण माने जा सकते ह। कायस्थो और वैश्यो में यह गुण रहा ह कि जब परिस्थिति उपस्थित हुई तब उन्होने एक ओर योद्धा का काय किया तो दूसरी ओर प्रशासन और कूटनीति सबधी कार्यों का भी कुशलता से सपादन किया। इसके अतिरिक्त, किसी सनिक अभियान मे विभिन्न राजपूत कुलों और वशो के लोग अपने शासक को छोडकर अन्य किसी शाखा के राजपूत सरदार की अधीनता मे जाना पसन्द नही करते थे, अपितु किसी राजपूतेतर प्रधान के अधीन सनिक अभियान में जाने से नही हिचकिचाते थे। इसलिए इन राजपूत राज्यो के सैनिक अभियानो का नेतृत्व (कमाडर इन चीफ) भी इन्ही कायस्थो और वैश्यो ने ही समय समय पर किया। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य को ओर विशेष ध्यान दिया जाकर इतिहासके इन विशिष्ट निर्माताओ के जीवन और कार्यों का प्रकाशन अब आवश्यक बन गया है। डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने उदयपुर राज्य के इतिहास में गैर राजपूत घरानो और उनके द्वारा किये गये कार्यों का सक्षिप्त सर्वेक्षण प्रकाशित किया है परन्तु इस विवरण म कई वशो की उपलब्धियों का वर्णन छूट गया है। जोधपुर, जयपुर और अन्य राजपूत राज्यो के कायस्थो, वश्यो ब्राह्मणो चारणो भाटो आदि की इस प्रकार की सेवाओ की विवरण सम्बन्धी सामग्री भी प्रचुर मिलती है।

ऐसे ही वैश्य महापुरुषो म भामाशाह का नाम अन्यतम है, जिसने मेवाड के दुर्दिनो में अपने आर्थिक, बौद्धिक और सनिक योगदान द्वारा एक सबल का काय किया। इसलिये उसे मेवाड उद्धारक'(Mewar-Savoir)क रूप म स्मरण किया जाता है।

डा० कालिकारजन कानूनगो ने कहा है 'सम्पूण राजपूताने म भामाशाह का नाम उतने ही प्रेम और सम्मान के साथ स्मरण किया जाता ह जिस प्रकार महाराणा प्रताप का।'[1]

भामाशाह के चरित्र गुणो और कार्यों की विशेषताओं का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ ह। भामाशाह की भाति उनके भाई ताराचद का मेवाड के प्रति योगदान भी प्रशसनीय रहा है। वह वीर और उत्तम प्रशासक था।

---

1 "The name of Bhamashah is remembered throughout Rajputana with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap (Studies in Rajput History P 51)

2. भामाशाह का वंश और पिता-भारमल्ल

वंश

भामाशाह 'कावडिया' गोत्र का ओसवाल जैन वश्य था। इसके पूर्वज दिल्ली के रहने वाले थे, वहां से चलकर ये कभी अलवर में आकर बस गये थे। [1] इनके पूर्वजों का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। यह वंश मूल में तोमर वंशी राजपूत था जिसने बाद में जैन धर्म अङ्गीकार कर लिया था।[2]

पिता और माता

भामाशाह के पिता का नाम भारमल्ल और माता का नाम कपूरदेवी था जो नाहेचा गोत्र की थी। इनके दो पुत्र हुए — भामाशाह और ताराचन्द। भामाशाह बड़ा और ताराचन्द छोटा था।

---

1 सेवग जेठमल ने इसके पूर्वजों का वर्णन इस प्रकार दिया है-" भामाशाह का पड़दादा धाना कावडिया जो राय की गोत्र ओसवाल दिल्ली का रहने वाला था, उसके बाप दादे बादशाह की खफगी के कारण लड़ाई में मारे गये थे, उस वक्त वह बच्चा ही था। इसीलिये उसको कावड में डालकर मेवाड़ लाये। इससे उसका और उसकी सन्तान का नाम कावडिया हो गया। धाना का बेटा साडा और तोडा का भारमल हुआ। ये लोग बादशाहों के यहां कोठारी और कामदार थे और उदयपुर में दीवान हो गये थे। दीवान होने के पहिले भी इन लोगों के पास बहुत धन था। इसीसे ये शाह कहलाते थे।"(वीरशासन, १६ दिसम्बर १९५२, पृ० ७)

डा० जगदीशचन्द्र जैन ने अपने शोधप्रबंध 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज" में जैन आगम ग्रंथों के हवाले से बताया है कि 'सोने के सिक्कों में दीनार अथवा केवडिक का उल्लेख है जिसका प्रचार पूर्व देश में था।' सम्भवतः 'केवडिक' सिक्के के प्रचुर संग्रह के कारण भारमल्ल के पूर्वज केवडिया या 'कावेडिया' या कावडिया' कहलाये।

2 अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली पर शासन करने से पहले वहां तोमरवंश का राज्य था।

भारमल्ल

भारमल्ल भारो मरद्, राखी ग्रान वल प्राण ।
मान बच्यो मेवाड को, राणा जातो थान ।।

(श्री वसव र्तसिंह महता)

रणथम्भोर की किलेदारी

मेवाड के प्रसिद्ध महाराणा सागा(सग्रामसिंह)ने १५२३ ई० में भारमल्ल को उसकी प्रशासनिक और सैनिक योग्यता देखकर ग्रनवर से बुलाकर अथवा जब सागा मेवात की ओर बढ़ा था तब अलवर से भारमल्ल को भी साथ लेकर आया और उसे रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया था।[1] रणथम्भोर उस समय मेवाड के ग्रन्तर्गत था। महाराणा सागा महाराना रानी कमवती (करमेती) से विशेष प्रसन्न था। यह रानी राव नवन का पुत्री थी। इससे सागा के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे — विक्रमादित्य और उदयसिंह। ये उस समय बहुत छोटे थे। महाराणा सागा का ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह था अत रानी को भय था कि रत्नसिंह के गद्दी पर बैठने के बाद उसके दोनो पुत्रों को अच्छी जागीरी नही मिलेगी। इसलिये रानी ने आग्रहपूर्वक निवेदन कर महाराणा सागा से अपने दोनो पुत्रो के लिये रणथम्भोर की जागीरी प्राप्त कर ली चूकि वे दोनो बालक थे जागीरी की सुरक्षा और देखभाल का भार महाराणा सागा के आदेश से रानी कमवती के चचेरे भाई हाडा सूरजमल (सूयमल्ल) को सौंपा गया। राव सूरजमल बूदी का शासक और मेवाड का मातहत था। विक्रमादित्य और उदयसिंह अपनी माता कमवती हाडी के साथ रणथम्भोर के दुर्ग मे रहने लगे।

भारमल्ल लम्बे समय तक रणथम्भोर का किलेदार रहा। उसकी किलेदारी के समय मे रणथम्भोर बाबत दो महत्वपूर्ण घटनाए हुई।

प्रथम घटना राणा रत्नसिंह के काल (फरवरी १५२८ ई० से १५३१ ई०) में हुई। खानवा के युद्ध के बाद कुछ दिनो से ही महाराणा सग्रामसिंह का देहान्त हो गया। उसका ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह मेवाड की राजगद्दी पर बैठा। बाबर के विरुद्ध युद्ध मे जाने से पूर्व ही रानी कमवती को विक्रमादित्य और उदयसिंह सहित रणथम्भोर भेजकर महाराणा सागा स्वय ग्रागे बढ़ा था। राणा सागा की उपस्थिति मे युवराज रत्नसिंह ने इस जागीरी को देने मे सहमति ग्रवश्य प्रकट की थी परन्तु मन में वह इससे ग्रसन्तुष्ट था। रणथम्भोर की जागीरी साठ

1 वीरविनोद, भाग २, पृ० २५२, डॉ० ओझा, राज० का इति० जिल्द, ३, पृ १३०२

लाख की थी। इतना बड़ा प्रदेश और उसके साथ इस प्रसिद्ध दुर्ग का अपना छोटे भाइयों के अधिकार में रहना राणा रत्नसिंह को पसंद नहीं आया। इतनी बड़ी जागीरी के अलग होने से मेवाड़ की शक्ति दुर्बल हो जाती।

अतएव महाराणा बनने पर रत्नसिंह ने कोठारिया के पूर्बिया चौहान पूरणमल्ल को राजमाता और दोनों भाइयों को चित्तौड़ ले आने के लिये भेजा। इस समय महाराणा सांगा द्वारा मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी से लिया हुआ जड़ाऊ ताज और कमरपटा भी रानी ने पूरणमल्ल को नहीं लौटाया और चित्तौड़ आने से यह कह कर टाल दिया कि हमारी देखभाल के लिए सूरजमल नियुक्त है, अतः हमारा जाना न जाना उसके अधीन है। पूरणमल्ल ने बूंदी जाकर राव सूरजमल्ल से भी बातचीत की। उसने टालते हुए कहा कि वह सब बात चित्तौड़ आकर महाराणा से निवेदन करेगा। ऐसी ही एक अन्य घटना और घटित हुई। राव सूरजमल्ल समझ गया कि महाराणा रत्नसिंह उसके विरुद्ध हो गया है। इसी समय उसने बाबर से मेल करने की इच्छा जाहिर की। बाबर ने इसका विवरण अपना 'तुजुक ए बाबरी' में दिया है–

" तारीख 18 मुहर्रम (हि० ९३५, मंगलवार = ३० सितम्बर १५२८ ई०) को राणा सांगा के दूसरे बेटे विक्रमादित्य की तरफ से, जो अपनी माँ पद्मावती[1] के साथ रणथम्भोर के किले में रहता है आदमी आये। ग्वालियर की सैर को रवाना होने से पूर्व अशोक[2] नाम के एक हिन्दू ने, जो विक्रमादित्य का विश्वस्त आदमी है, आकर तावेदारी और खिदमतगारी जाहिर की, और अपने हुजूर के लिए सत्तर लाख की जागीर मांगकर ऐसा इकरार किया कि जब वह रणथम्भोर का किला सौंप दे तो उसकी इच्छानुसार परगने दिये जाय। इस बात का वादा कर के हमने रुखसत दी। इस मियाद से कुछ ज्यादा दिन बीत गए। यह आदमी हिन्दू विक्रमादित्य की मां पद्मावती का नजदीकी रिश्तेदार होता है। इसने यह हाल मां बेटा से जाहिर कर दिया है। उन्होंने भी अपनी तरफ से दौलतखाही और खिदमतगारी कबूल कर ली है। एक ताज और जरी का पटका था। जब सांगा ने सुलतान महमूद को जेर किया तो वह ताज और पटका उसके हाथ आया, तब वह ताज और जरी का पटका जो तारीफ के लायक था, उसने महमूद को छोड़ दिया। वही ताज और जरी का पटका विक्रमादित्य के पास था। उसके बड़े भाई रतनसी (रत्नसिंह) ने जो बाप की जगह राणा होकर चित्तौड़ पर कब्जा रखता है ताज और जरी का पटका अपने छोटे भाई से मांगा था। इसने नहीं

1 बाबर ने भूल से कर्मवती के स्थान पर 'पद्मावती' लिखा है।
2 यह परमार वंश का और बिजोलिया वालों का पूर्वज था।

दिया इन आदमियों के साथ जा आये हैं, नान और जरी का पटका मुझे देना कहलाया है। रणथम्भोर के बदले बयाना मांगा था। बयाने की बात से उनको टालकर रणथम्भोर के एवज में शमशाबाद देने का वादा किया गया। उसी दिन इनके साथ हुए आदमियों को खिलअत पहना कर नौ दिन की मियाद से बयाने जाने की रुखसत दी।"

फिर, बाबर ने पुन लिखा है- "तारिख ५ सफर (२१ अक्टूबर) सोमवार के दिन विक्रमादित्य के अव्वल एलची और पिछले एलची के साथ पुराने हिन्दुओं में से देवा का बेटा बेहरा होसी भेजा गया, कि वह रणथम्भोर सौंपने, खिदमत गारी कबूल करने और बर्ताव के लिए बात कर। यह हमारा जो आदमी गया है, देखकर, समझकर, यकीन करके आवे और वह अपनी बातों पर जमा रहे मैंने भी वादा किया, खुदा पूरा करे - उसके बाप की जगह राणा करके चित्तौड़ में बठा दूंगा।" 1

मेवाड़ के महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के राव हाडा सूरजमल के बीच मन-मुटाव हो गया था। बूंदी हाडा चौहानों का स्वतंत्र राज्य होने पर भी मेवाड़ के अधीन था। अत बूंदी के राव को मेवाड़ के महाराणा के आदेशों की पालना करनी होती थी और महाराणा के राजदरबार में उपस्थित होकर रस्म अदा करनी होती थी। रणथम्भोर की देखभाल और सुरक्षा का जिम्मा भी अक्सर मेवाड़ वालों की ओर से बूंदी के राव को सौंपा जाता रहा। सूरजमल बाबर जैसे मेवाड़ के बड़े शत्रु से मिलकर बूंदी को स्वतंत्र कराना चाहता था। वीरविनोदकार ने लिखा है कि सूरजमल हाडा राणा रत्नसिंह को इस कार्यवाही द्वारा भयभीत करना चाहता था। परन्तु यह कथन सर्वथा सत्य नहीं है। बूंदी की स्वतंत्रता के साथ हाडा सूरजमल बाबर की मदद से अपने भानजे विक्रमादित्य को मेवाड़ का राणा बनाना चाहता था, एवं रत्नसिंह को अपदस्थ करना चाहता था। इस बारे में उसने अपनी बहिन रानी कर्मावती के साथ भी सलाह की थी। वह भी चाहती कि उसका बड़ा बेटा विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। अथवा मेवाड़ से रणथम्भोर स्वतंत्र राज्य बन जाये जिसके लिए मेवाड़ के महाराणा के साथ संघर्ष होना अनिवार्य था इस संघर्ष में सफलता पाने के लिए *बाबर जैसे शक्तिशाली शासक का सहयोग अपेक्षित था।*

इसलिए १५२८ ई० से पूर्व ही उसने मुगल बादशाह बाबर के बड़े पुत्र हुमायूं

1 वीरविनोद, भाग २, पृ ५-६ पर उद्धृत।

को राखी भिजवायी, यह बात राजस्थान में प्रसिद्ध है। [1]

इस कार्यवाही से मेवाड की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती, और बूंदी का राज्य मेवाड से स्वतंत्र हो जाता। इस षडयंत्र की सूचना मिलने पर महाराणा रत्नसिंह को हाडा सूरजमल के विरुद्ध क्रोध आना स्वाभाविक था। हाडा राव मेवाड की स्वाधीनता को इस समय धूल में मिलाना चाहता था। हाडा सूरजमल की यह कार्यवाही कभी सराही नहीं जा सकती।

एक शिकार के बहाने महाराणा रत्नसिंह राव सूरजमल को बाहर ले गया। वहा मौका देखकर दोनो ने एक दूसरे पर वार किये तब दोनो की ही वहीं मृत्यु हो गयी। इसके बाद सरदारों ने रणथम्भोर से बुलवा कर चित्तौड की गद्दी पर विक्रमादित्य को बिठा दिया। उसने अपने मामा सूरजमल के पुत्र सुर्तान(सुल्तान सिंह) जो उस समय आठ वर्ष की उम्र का था को १५३१ ई० में बूंदी की गद्दी पर बठाया। वह दुष्ट प्रकृति का था और उसके व्यवहार से अन्य हाडा सरदार नाराज होकर अपने ठिकानों में चले गये। [2]

इसके बाद विक्रमादित्य ने राणा बनने पर हुमायू को पत्र लिखकर उसकी अधीनता प्रकट की तथा उससे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के विरुद्ध सहायता की माग की थी।[3]मेवाड के अनेक सरदार विक्रमादित्य के दुर्व्यवहार व ऐसे ही कामो

1 वीरविनोद भाग २ पृ ४ कर्मावती ने पद्माशाह के माफत हुमायू को राखी भेजी (मेवाड मुगल सबंध पृ ३६)। पद्माशाह भाट था जो बूंदी की ओर से भेजा गया था। डूगरसिंह को मेवाड की ओर से भेजा गया था जो विक्रमादित्य का भाई लगता था। इस घटना का उल्लेख 'रावल राणारी बात में इस प्रकार किया है -

" स १५८० राणो सागोजी वकुण्ठ पधार्या। कालपी रे डेरे जेहेर हुमा। प्रमार करमचद रतनसीघजी कीधो। पाट रतनसीघजी ने बैठाया। भाई विक्रमादित्य जी ने परा काढया। हाडी करमती राव नारायणजी री बेटी उदेसिंघजी रा प्रभ था बूंदी गया छ महेन प्रभ है। चौथे महिने बूंदी म उदयसिंघ रो जनम हुओ। भाट पदमसाहँ जह राखीरो वहानो करन दली हुमाऊ पतीसाह नम्बे मोकरया। हजूर पोहाता राखी कागद नजर कीदो। पातसाह कही तो कावली वहीन मागे जदो तयारी हैं या कहँ भाट ने सीख दीदी। या रतनसीघजी सामलत राव सुरजमल उपर ग्रस राखी। (रावल राणारी बात पत्र ८१ अ ब)

2 वीरविनोद, भाग २, पृ ७-८, २६,६९

3 डा० एस०बी०पी० निगम ने शेरशाह सूरि' के प्रकरण में फारसी इतिहास को उद्धृत करते हुए लिखा है इसी बीच राना प्रताप(?) ने हुमायु बादशाह को

के कारण उसके विरुद्ध हो चुके थे। तुजुकेबाबरी के उपर्युक्त विचार से ज्ञात होता है कि बाबर के पास रानी कर्मावती और हाडा सूरजमल द्वारा भेजे गये अशोक परमार आदि प्रमुख सरदार दो बार गये थे। बाबर ने मेवाड़ को अधीन करने का यह मौका देखा। उसने भी विक्रमादित्य को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाने का वादा किया था परन्तु रणथम्भोर के बजाय बयाने की जागीरी देने का वचन स्वीकार नहीं की। वह रणथम्भोर की चाबियां पहले प्राप्त करना चाहता था और यह बात उसने दूतों के साथ की गई बातचीत में जाहिर भी कर दी थी। बाबर बयाने के बजाय शम्साबाद देना चाहता था। परन्तु परिस्थितियों को देखने से ज्ञात होता है कि न तो बाबर को रणथम्भोर सौंपा जा सका और न विक्रमादित्य को अन्यत्र जागीरी मिली।

मेरे विचार से रणथम्भोर मुगलों को न दिये जाने में वहां के किलेदार भारमल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारमल ने रानी कर्मावती को इस प्रस्तावना की कार्यवाही के दूरगामी परिणामों से अवगत कराया होगा। रानी के पति राणा सांगा की नीति में बाबर एक विदेशी आक्रान्ता था और वह उसे देश में से निकाल बाहर भगाना चाहता था। स्वामिभक्त भारमल ने रणथम्भोर किले की चाबियां देने से भी इन्कार किया हो। मेवाड़ की स्वाधीनता नष्ट हो जाती। इसीसे बाबर के चाहने पर भी रणथम्भोर उसे नहीं सौंपा गया।

वीरविनोद में लिखा है कि -

"भामाशाह के बाप भारमल को महाराणा सांगा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी, जो पीछे सूरजमल हाडा बूंदीवाले को मिली इस पर भी किले रणथम्भोर कि ऐतिबारी नौकरी और कुल कारबार भारमल के ही हाथ रहा था।" [1] अतः रणथम्भोर किला मुगलों को सौंपने नहीं देने के पीछे भारमल की भूमिका से नकारा नहीं जा सकता।

दूसरी घटना महाराणा उदयसिंह के काल की है। वीरविनोद में लिखा है कि एक बार शेरशाह सूर (१५३०-१५४५ई) ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की तब भारमल ने कुछ पेशकश (नजराना) देकर चढ़ाई रद्द करा दी। [2] फारसी इतिहास-ग्रंथों से ज्ञात होता है कि १५४२ ई० में ग्वालियर और मालवा की विजय करने के उपरान्त लौटते समय शेरशाह ने रणथम्भोर का घेरा लिया। तब वहां

एक प्रार्थना पत्र लिखा कि मैं दिल्ली के अधीन हूं तथा सुलतान बहादुर गुजराती मेरे साथ अन्याय कर रहा है बादशाह मेरी स्थिति की ओर ध्यान दें। (पृष्ठ११६)

1 वीरविनोद भाग 2 पृ २५२

2 वीरविनोद, भाग २ पृ ६९

के हाकिम ने दुर्ग को शेरशाह को सौंप दिया। शेरशाह ने वहाँ अपने बड़े पुत्र आदिलशाह को हाकिम नियुक्त किया। वह वहाँ अधिक समय तक टिक नहीं सका और अपने भाई जलाल खां, जो शेरशाहसूर की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था, के साथ की लड़ाई में हारकर शीघ्र ही पटना की ओर भाग गया।[1]

इस समय किले की किलेदारी पूर्ववत् भारमल्ल के पास ही रही। वह तब तक वहां किलेदार बना रहा जब महाराणा उदयसिंह ने राव सुर्जन हाडा को १५५४ ई० में रणथम्भोर की किलेदारी सौंप दी।[2] भारमल्ल सदैव मेवाड़ के प्रति स्वामिभक्त और वफादार बना रहा।

सुर्तान (सुल्तानसिंह) के दुर्व्यवहार के कारण महाराणा उदयसिंह ने बून्दी का पट्टा और रणथम्भोर की किलेदारी सुर्जन हाडा को १५५४ ई० में सौंप दी। उसे राजतिलक कर सैन्यसहित बून्दी की ओर रवाना किया। सुल्तानसिंह बून्दी से भागकर पाटन होता हुआ रावसल्ल खींची के पास गया, वह(खींची)महाराणा का बड़ा सरदार था उसने महाराणा से निवेदन कर सुल्तानसिंह को बड़ाद का प्रदेश दिला दिया। बून्दी पर अधिकार करके राव सुर्जन रणथम्भोर की ओर बढ़ा। *इस समय (१५५४ ई०) महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को उसके* परिवार-सहित चित्तौड़ दुर्ग में बुला लिया। भारमल्ल की किलेदारी की निरन्तरता के कारण ही सूरवंश के अधीन होने पर भी रणथम्भोर को मेवाड़ का महाराणा अपने अधीन ही मानता था।

राव सुर्जन हाडा के पास रणथम्भोर का दुर्ग १५६८ ई० में अकबर की अधीनता स्वीकार करने पर न रहा। बिना संघर्ष किये रणथम्भोर जैसे दुर्ग को सौंप देने को मुगल बादशाह अकबर ने अनुचित माना और सुर्जन की मूर्ति कुत्ते के रूप में बनाकर आगरे के किले में लगवा दी थी।

---

१ आमेर शास्त्र भंडार में इस समय रणथम्भोर में लिखी गई कुछ पुस्तकों की पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं जिनमें यहाँ के शासक का नाम खिज्रखां दिया है (देखें- 'राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची,' भाग ३ पृ०७३)। यह संभवतः सूर शासक द्वारा नियुक्त यहां कोई अधिकारी रहा होगा।

२ रामवल्लभ सोमानी का मत है कि - " Bharmal was a kiladar of Ranathambhor during the time of Sanga and moved to Chittor on its fall at the hands of Sher Shah Sur " ('Jain Inscriptions of Rajasthan P 233)

एक लाख का पट्टा और सामन्त का पद प्राप्त करना –

भारमल्ल ने अपनी दीर्घकालीन किलेदारी की अवधि में कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठा वफादारी, कूटनीतिज्ञता और प्रशासन कुशलता का अच्छा परिचय दिया था। इसी कारण प्रसन्न होकर वि० स० १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को एक लाख का पट्टा देकर अपना सामन्त बनाया था।[1] मेवाड़ के सामन्तों में यह एक बहुत बड़ी जागीरी थी। बाबर और शेरशाह के मामलों में भारमल्ल ने रणथम्भोर की किलेदारी के समय जो देशभक्ति और स्वामिभक्ति प्रदर्शित की थी उसी से प्रभावित होकर उसे इतनी बड़ी जागीरी का पट्टा दिया गया था। अन्य कारण भी थे। भारमल्ल ने महाराणा उदयसिंह के बाल्यकाल में रणथम्भोर में उनकी सुरक्षा व देखभाल की थी, जिसका जिम्मा राणा सांगा ने उसे (भारमल्ल) को सौंपा था। इसके अतिरिक्त भारमल्ल स्वयं बहुत अधिक धनी, वीर और योग्य प्रशासक था। मेवाड़ में वह तब तक पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त कर चुका था।

शाह भारमल्ल के चित्तौड़-निवासवाले के मुझे दो ताम्रपत्र देखने को मिले जिनमें उसका उल्लेख है। एक–संवत १६१५ माघवदी १५ और दूसरा संवत १६२२ मार्गशीर्ष सुदि १८ का है।[2]

एक पुरानी बही में इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है कि ग्रामि... निवासी ब्राह्मण गौतमा के पास रुपये उधार लेने के लिए महाराणा उदयसिंह ने जिन लोगों को भेजा था उनमें भारमल्ल प्रमुख था।[3]

धर्म प्रेम –

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, भारमल्ल ओसवाल जैन था। अपने जीवन

1 वीरविनोद, भाग २ पृ० ६८ तथा पृ० २५२। पृ० ६८ पर कविराजा श्यामलदास ने भूलसे लिख दिया है कि- 'वि० १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भामाशाह के बाप भारमल्ल को अलवर से बुलाकर एक लाख का पट्टा बख्शा था।" भारमल्ल को महाराणा उदयसिंह ने नहीं, अपितु उसके पिता महाराणा संग्रामसिंह ने अलवर से बुलवाकर रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया था, 'वीरविनोद' भाग २, पृ० २५२ पर भी यह बात लिखी गई है। एक ही ग्रंथ में भूल से ये दो विरोधाभासी वचन लिख दिये हैं। यहां केवल यही अभिप्रेत है कि महाराणा उदयसिंह ने सम्मान-पूर्वक भारमल्ल को एक लाख का पट्टा दिया था।

2 ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियां परिशिष्ट में देखें।

3 पुरोहित संग्रह बही संख्या ५ वि० स० १७६४-८१, पृष्ठ १६४,

बाद के प्रारम्भिक भाग में वह तपागच्छ का अनुयायी रहा, परन्तु बाद में दपागर सूरी के उपदेश से प्रभावित होकर भारमल्ल और उनके साथ अमर नाम नागौरी लुंकागच्छ के अनुयायी बन गये। इस कथन का प्रमाण नागौरी लुंकागच्छ की एक पट्टावली में मिलता है। इस पट्टावली में इस तथ्य का भी प्रमाण मिलता है कि सं० १६१६ में चित्तौड़ पर भारमल्ल निवास करता था। साथ ही, यह भी ज्ञात होता है कि राजनैतिक कार्यों में व्यस्त होने पर भी भारमल्ल व्यक्तिगत जीवन में धर्मानिष्ठ रहा।

धनी –

लुंकागच्छ पट्टावली में बताया है कि भारमल्ल अठारह करोड़ का सम्पत्ति वाला था। इससे ज्ञात होता है कि वह अपने समय का एक बहुत बड़ा धनी व्यक्ति था।

अन्तिम दिन –

भारमल्ल ने अन्तिम दिन बड़े आराम से व्यतीत किये। वह मेवाड़ के बहुत उच्चपद पर आसीन था। उसकी हवेली चित्तौड़ दुर्ग पर मैगजीन (तोपखाने) के सामने कवायद के मैदान के पश्चिमी किनारे पर थी जिसको महाराणा सज्जनसिंह ने कवायद का मैदान तैयार कराते समय तुड़वा दिया था। यह हवेली बाद में 'भामाशाह की हवेली' के नाम से प्रसिद्ध रही। चित्तौड़गढ़ की तलहटी में पाडन पोल के पास भारमल्ल की हस्तिशाला थी। वह भी बाद में 'भामाशाह की हस्तिशाला' कहलाई।

इस प्रकार महाराणा उदयसिंह के शासन में भारमल्ल को उच्च प्रतिष्ठा और स्थान प्राप्त हो चुका था। वह महाराणा के परम विश्वसनीय व्यक्तियों में से था। मार्गशीर्ष सं १६२४ (अक्टूबर १५६७ ई०) में चित्तौड़ पर मुगल बादशाह अकबर का आक्रमण हुआ। घेरा डालने से पूर्व अपने सरदारों के आग्रह और सलाह पर महाराणा उदयसिंह परिवार सहित चित्तौड़ से कुम्भलगढ़ चला गया था। सब सामन्तों ने अपने पुत्रों को भी महाराणा के साथ भेज दिया था। भारमल्ल के दोनों पुत्र भी इस समय महाराणा के साथ मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र में चले गये थे। स्वयं भारमल्ल चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा करते हुए अकबर की सेना के साथ लड़ता हुआ काम आया था।



3. भामाशाह

सवस्व स्वस्नेहनसा पूरित कर पातल को ।
भामे प्रज्वलित कियो भारत के प्रदीप को ॥
(श्री बलवन्तसिंह महता)

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

भामाशाह के वंश परिवार और गुरु का परिचय उनके समकालीन रचित निम्न दो काव्यों में मिलता है-

1, विदुर' कविकृत 'भामावावनी'' की रचना (रचनाकाल स १६४६) सभवत भामाशाह के आश्रय म हुई थी। इसके प्रारम्भ मे वंश परिचय' इस प्रकार दिया है —

' नमल गच्छ नागोरि भानि देपाल जिसा गुर ।
दया धम्म दाखिये , देव चउवीस तीयङ्कर ॥
पिरियावटि पृथिराज साह भारमल्ल सुणिज्जे ।
जसवत बाधव जोड , करण कलीयण कहिज्जइ ॥
ताराचद लखमण राम जिम चित चोमण जोडी ययो ।
कुलतिलक अभग कावेडिया, भामो उजवालण भयो ॥२॥
मूल पट भारमल्ल साख कावडिया मोहइ ।
पुत्र-पौत्र परिवार, मउरि मभण दति मोहइ ॥
लखमी नित लखगुणी फालत्या सुइज फूल फल ।
विस्तरियो मणउ चिहु खड बिचइ, जुगि ग्रालखणि एहान ॥
कलिकाल इयइ पीथल कुलइ, भामउ कलपतरु भवण ॥३॥

इससे ज्ञात होता है कि भामाशाह का कुल कावेडिया कहलाता था, इस कुल के मूल पुरुष का नाम पृथ्वीराज' था । इस कुल मे उत्पन्न भारमल्ल कलि युग म करण के समान दानी था । इसका छोटा भाई जसवत था। भारमल्ल के दो पुत्र हुए भामाशाह और ताराचन्द । ये दोनो भाई राम लक्ष्मण की जोडी के समान थे । भारमल्ल वृक्ष का मूल था और पुत्र पौत्रो के रूप में उसका परिवार शाखाएं थीं । नागपुरीय (लुकागच्छ) के देपाल (देपागर) उनके गुरु थे। इस वंश म भामाशाह कल्पतरु के समान हुआ ।

2 कवि हेमरतन कृत 'गोरा बादल पद्मिनी कथा चौपाई' की रचना (रचना-काल स 1645) सादडी मे ताराचन्द के आश्रय मे हुई थी। इसकी प्रशस्ति मे लिखा है–

"संवत सोलहसई पणयाल
सावण सुदि पंचम सुविशाल।
पृहवी पीठि घनु परगडी,
सबलपुरी सोहइ सादडी॥
प्रथवी प्रगट राण प्रताप,
प्रतपइ दिन दिन अधिक प्रताप।
उस मंत्री सद्बुद्धि निधान,
कावेडिया कुलतिलक निधान॥
सामि धरमि धुरि भामु साह
वयरी वंस विधुंसण राह।
तस लघुभाई ताराचन्द,
अवनि जाणि अवतरियो इंद॥
ध्रूप जिमि अविचल पालै धरा,
सत्रु सहू कीधा पाधरा।
तस आदेस लहि, शुभ भाई
सभा सहित पामी सुपसाई॥
वात रची ए बादिल तणी,
सामि धरमि ए मोहामणि।'

भामाशाह का भाई ताराचन्द उससे छोटा था।

भामाशाह का जन्म आषाढ शुक्ला १०, संवत् १६०४ (२८ जून १५४७ ई) को हुआ था। इस प्रकार भामाशाह राणा प्रताप (जन्म ज्येष्ठ सुदि ३, स० १५९७-९ मई १५४० ई०) से सात वर्ष छोटा था। इसका बाल्यकाल चित्तौड़-गढ म व्यतीत हुआ। यहीं उसने घुडसवारी करना, अस्त्र चलाना आदि का ज्ञान प्राप्त किया। भामाशाह के प्रारंभिक जीवन का विशेष वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता।

कहा जाता है कि भामाशाह चित्तौड़ दुर्ग के नीचे पाडनपोल के पास बनी हुई अपनी हस्तिशाला मे निवास करता था। महाराणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र प्रताप भी दुर्ग की तलहटी म रहता था। महाराणा उदयसिंह का रानी भटियानी पर अधिक प्रेम था। छोटा होने पर भी इस रानी के पुत्र जगमाल को युवराज

बनाया गया था। प्रताप जानता था कि उस राजगद्दी नहीं दी जावगी। उस समय प्रताप को निर्वाह हेतु प्रतिदिन दुग स उसके पास पेटिया भजा जाता था। उस पेटिये से वह दस व्यक्तियो की रसोई बनवाकर प्रतिदिन दस राजपूतो क साथ एक पक्ति में बठकर भोजन करता था जो बाद म मेवाड की एक रीति बन गई। इसीकाल में भामाशाह, जो दुग की तलहटी में रहता था प्रताप क निकट सम्पक में रहा। उनकी मित्रता दिना दिन गाढी होती गई। भारमल की मृत्यु के बाद महाराणा उदयसिंह न उसके एक लाख क पट्टे का हकदार भामाशाह को बनाया था।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु क बाद जब प्रताप को गद्दी पर बैठाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब भामाशाह जो एक बडी जागीरी का स्वाम त था न प्रताप का पक्ष लिया और उस मेवाड की राजगद्दी पर बठाने म योगदान किया। प्रताप के साथ अपनी मित्रता को उसन आजीवन निभाया और स्वामिभक्त प्रमाणित हुआ।

विवाह

लु कागच्छ की पट्टावली स विदित होता है कि भामाशाह का विवाह भीमा(भामा) नाहटा की पुत्री क साथ हुआ था। पट्टावली म यह भी बताया है कि भीमा क पास दक्षिणावत शख था जिसके प्रभाव स उसके घर म अठारह करोड का धनराशि उत्पन्न हो गयी थी। शखदव ने भामा को स्वप्न म दशन देकर कहा कि तुम्हारे घर म पुत्री का जन्म होगा वह अपने पुण्य क प्रभाव से भारमल कावेडिया क घर म ब्याही जायगी मैं भी उसक साथ उसके घर जाऊगा। तब अपनी भावी पुत्री का विवाह सम्बध भारमल कावडिया के पुत्र भामाशाह के साथ करने के निमित्त श्रीफल (नारियल) के स्थान पर उस दक्षिणावत शख को कीमती वस्त्र स ढक कर भामा नाहटा न भारमल्ल का दे दिया। उस सम्मानपूवक घर म ले जाकर भारमल्ल ने चन्दन की चौकी पर रखकर उसकी पूजा की जिसस उसके घर म भी अठारह करोड की धनराशि उत्पन्न हो गई। कहने का तात्पय यह कि भारमल्ल को भामाशाह क विवाह के उपलक्ष मे विपुल धनराशि प्राप्त हुई थी अथवा भामाशाह के विवाह क बाद भारमल्ल क घर म लक्ष्मी का वास हो गया।

हल्दीघाटी युद्ध

मेवाड के इतिहास ग्र था म भामाशाह का नाम सवप्रथम हल्दीघाटी युद्ध के प्रसग मे सामने आता है।

१५७२ ई० म महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रताप मेवाड की राज गद्दी पर बठा। उस अपन जीवन के अतिम काल (१५९७ ई०) तक मुगलो के साथ सघष करना पडा। मुगल विदेशी थे, अत प्रताप को विदेशी शासनसत्ता

कतई पसन्द न थी। महाराणा प्रताप की स्वाधीनतावादी नीति और मुगल बादशाह अकबर की विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीति के बीच संघर्ष अवश्यम्भावी था। अकबर चाहता था कि राजस्थान के अन्य राजपूत राजाओं की तरह राणा प्रताप भी बिना प्रतिरोध किये उसकी प्रभुता मान ले। एतदर्थ उसने साम-दाम-दण्ड भेद की नीति का अनुसरण किया।[1]

प्रारम्भ में चार वर्ष तक अकबर ने अपने प्रमुख सरदारों और मन्त्रियों को प्रताप को समझाने बुझाने के लिए मेवाड़ भेजा। इस क्रम में जलालखां कोरची, मानसिंह, राजा भगवन्तदास, राजा टोडरमल के नेतृत्व में चार दूत-मण्डल भेजे गये।[2] परन्तु उनके द्वारा दिया गया प्रलोभन और भविष्य में सुख समृद्धि की आशा प्रताप को आकर्षित न कर सकी। राजा मानसिंह के साथ भेंट वार्ता के अवसर पर प्रताप ने उस उदयसागर की पाल पर प्रीतिभोज दिया। इस आयोजन की व्यवस्था का भार भामाशाह को सौंपा गया होगा। भोजन के समय स्वयं महाराणा प्रताप उपस्थित नहीं हुआ और युवराज अमरसिंह को भेज दिया। कुंवर मानसिंह की भुआ का विवाह अकबर जैसे विदेशी म्लेच्छ के साथ हुआ था इसे प्रताप और उसके सहयोगी बिल्कुल अच्छा नहीं मानते थे। अतः प्रताप जैसे कुलाभिमानी व्यक्ति के लिए यह शोभनीय नहीं था कि वह मानसिंह कछवाहा के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करे। प्रताप ने पेट दर्द का बहाना बनाकर भोजन में सम्मिलित होने के लिए आने से इन्कार कर दिया। साथ ही भोजन समाप्ति के बाद उस स्थान को खुदवाकर गंगाजल छिड़कवाया उसकी शुद्धि करवाई काम आये पात्रों को तालाब में फिंकवा दिया - इन बातों की खबर मानसिंह के पास पहुंचे बिना नहीं रह सकी। इससे मानसिंह ने अपने को अपमानित अनुभव किया और वह क्रुद्ध होकर अकबर के पास पहुंचा। सुलह के अंतिम

1 कुम्भा द्वारा 'हिन्दुसुरत्राण' की उपाधि धारण की गई थी, जिसे गुजरात मालवा और दिल्ली के बादशाहों ने भी स्वीकार किया था। हिन्दुसुरत्राण का ही रूप बाद में 'हिन्दुआ सूरज' हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश के समस्त हिन्दुओं (भारतीयों) की राजभक्ति का प्रतीक मेवाड़ बना था रहा था। एक ही देश में दो सम्प्रभु शासक नहीं हो सकते थे। जब तक मेवाड़ के शासक द्वारा मुगल बादशाह को शासक नहीं माना जाता, तब तक वह भारतवर्ष का सम्प्रभु शासक नहीं बन सकता था। इसी कारण मुगल सेना में बने हुए अधिकांश राजपूत और हिन्दू शासकों की आन्तरिक सहानुभूति मेवाड़ के शासक महाराणा प्रताप के प्रति थी। मेवाड़ का मुगलों के साथ संघर्ष होने में यही मूल आधार था।

2 डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव 'अकबर महान्' भाग १, पृ १९६-१९७

हल्दीघाटी का युद्ध मेवाड़ के इतिहासों में 'खमनौर का युद्ध' नाम से सिद्ध रहा है। इस युद्ध में तवर रामशाह और उसके तीन पुत्र (शालिवाहन मानसिंह या भवानीसिंह और प्रतापसिंह), झाला बीदा, झाला मानसिंह रावत नेतसी (सारंगदेवोत), राठोड रामदास (जयमल का पुत्र) डोडिया भीमसिंह, राठोड शंकरदास आदि कई प्रमुख सरदार मारे गये।

हल्दीघाटी युद्ध में से प्रताप के निकलकर चल जाने को लेकर मुगल पक्ष ने इसे अपनी विजय बताया, परन्तु वास्तविक विजयश्री प्रताप को प्राप्त हुई। वह न तो परास्त हो सका और न मुगल मेवाड़ पर अपना स्थायी आधिपत्य जमा सके। *यह युद्ध राणा प्रताप द्वारा चलायी गई गुरिल्ला युद्ध की रणनीति का* एक अंग था। अतः इस युद्ध से भागने या वहां पर हार या जीत होने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। युद्ध के प्रभाव, ख्याति और दीर्घकालीन संघर्ष की शुरुआत को देखते हुए इसमें प्रताप की सफलता मानी जानी चाहिए।[1]

---

*excelted Imperialists in the confusion the hope of Mewar himself was all but surrounded by the enemy and about to be cut off But it was not to be so long as there remained a single Rajput true to his chieftan Realizing the crisis Bida Zala promptly snetched away royal umbrella from above the head of Rana and rush d forward with it shouting that he himself was Maharana Pratap Defing the imperialists to face him the ruse succeeded

The Mughal captains each eager to win the owner of b ing the Maharana s captur crowded rou d Bida

The pressure on Pratapsingh was realised and his faithful adherents seazing his bridle turned his horse head and laid their wounded chieftan out of safety through the pass in the Rear

Bida made death he coveted With his fall struggle ended The remained Mewar army disolved and fled through the pass

('Military History of India')

१ मेजर अरफोर्ड डेविड ने युद्ध-परिणाम की समीक्षा करते हुए उचित ही लिखा है ' The Mughals won the victory but achieved nothing and *

कनलटाड ने हल्दीघाटी को मेवाड की 'थर्मोपीली' कहकर इस युद्ध के सम्मान को विश्वविख्यात किया।[1]

हल्दीघाटी के युद्ध को 'जनयुद्ध' की संज्ञा दी जाती है यह उचित ही है। इस युद्ध में न केवल शासकवर्ग ने विदेशी शासनसत्ता के विरुद्ध हथियार उठाए अपितु तत्कालीन मेवाड के हर वर्ग के जन समुदाय ने इसमें सक्रिय सहयोग देकर देश प्रेम और राजभक्ति का परिचय दिया था। इसी से हमारे 'स्वाधीनता-आन्दोलन' का यह प्रतीक और आदर्श बन गया। इस युद्ध में राजपूत जाति के लगभग सब वर्गों, जैसे चूण्डावत सिसोदिये, झाला, राठौड तवर(तोमर), डोडिय, चौहान, पडिहार (प्रतिहार) ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त कायस्थ, ब्राह्मण, वैश्य चारण बारहट भी इसमें सम्मिलित थे। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि मुगलों से लड़ने के लिए मेवाड के छत्र के नीचे हकिमखां सूर अपनी पठानी सेना के साथ शामिल हुआ था जिसे राणा प्रताप ने सम्मानपूर्वक अपनी सम्पूर्ण सेना के हरावल का नेतृत्व सौंपा था। पठानों का मूल प्रदेश प्रारम्भ से भारत ही का अग रहा है। अतः पठान अपने को इसी देश का निवासी मानते थे। यह इतिहासकारों की महान् भूल रही है कि उन्होंने पठानों को विदेशी मान लिया। पठान भी अन्य स्वदेशियों की भांति मुगलों को विदेशी मानते थे। इसी कारण मेवाड के अधीन मुगलों के विरुद्ध लड़ने में पठानों ने संकोच नहीं किया। राणा प्रताप की राष्ट्रीय जनवादी नीति के फलस्वरूप ही यह संभव हो सका। इससे भी बढ़कर एक और तथ्य उभरकर सामने आता है वह यह कि हल्दीघाटी के युद्ध में मेरपुर का राणा पूंजा अपनी सुसज्जित भील सेना के साथ इसमें उपस्थित हुआ था। यह इतिहास में प्रथम अवसर था जब भीलों ने राजपूत सेना का सहयोग किया था। भीलों के तीरों की बौछार ने मानसिंह और उसके सेनानायकों को युद्ध की समाप्ति के उपरान्त भी आगे बढ़ने से रोका और वह वापिस लौटते हुए राणा व उसकी सेना का पीछा करने का साहस नहीं कर सका। इस प्रकार हल्दीघाटी का युद्ध सर्वतोभावेन जनयुद्ध कहा जाने योग्य है।

* long remembered the battle for many years afterwards in Delhi Horryheaded Mughal warriors would passed the nights relating the youthful soldiers the tales of Haldighati and amazing deeds of Maharana Pratap " (Major Alfred David Indian Art of war P 32)

1 Haldighati is the Thermopylae of Mewar the field of Deweir her Merathan ' (Tod, Annals', Part I, P 278)

परिस्थितियों को देखते हुए स्पष्ट होता है कि उस समय राणा के पास उसके विश्वस्त अनुयायी भामाशाह और ताराचन्द को छोड़कर अन्य कोई नहीं हो सकते जिन्होंने उसके घोड़े की लगाम पकड़कर घोड़े का मुँह घुमा दिया और व अपने घायल सरदार को अपनी सेना के पृष्ठ भाग से घाटी के उस पार सुरक्षा पूर्वक ले गये, क्योंकि मुगलों के बायें पक्ष को छिन्न-भिन्न करने के बाद उसके सेना नायकों के सेना सहित भाग जाने पर राणा की सेना के दाहिने पक्ष के राजा रामशाह तवर और उसके साथ भामाशाह और ताराचन्द भी अपने स्थान से हट गये क्योंकि वहां लड़ने के लिए कोई बचा नहीं था। इसके बाद वे लगातार प्रताप के सामने और इर्द गिर्द बने रहे। इसका वर्णन जदुनाथ सरकार के शब्दों में —

' जब सामान्य रूप से युद्ध होने लगा तब दाहिने बाजू में राजा रामशाह तवर मुगल सेना के बायें बाजू के नायक के भाग जाने के बाद अपने स्थान से हट गया। तवर लगातार राणा प्रताप के सामने ही बना रहा और इस प्रकार राणा की उस समय तक रक्षा करता रहा जब तक उसे (तवर को) जगन्नाथ कछवाहा ने मौत के घाट नहीं उतार दिया। (मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया -मूल का हिन्दी अनुवाद) रामशाह तवर मारा जा चुका था। अतः भामाशाह और ताराचन्द ने ही घायल राणा प्रताप को युद्ध मैदान से निकालकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया था।

हल्दीघाटी युद्ध क्षेत्र से महाराणा प्रताप के लौटने की घटना के साथ एक कथानक जोड़ा जाता है। रणछोड़ भट्ट प्रणीत राजप्रशस्ति महाकाव्य में लिखा है - प्रताप को लौटता हुआ देखकर मानसिंह ने तत्काल दो मुगलों को उसके पीछे भेजा। मानसिंह की आज्ञा लेकर शक्तिसिंह भी उनके पीछे चल पड़ा। मानसिंह के उन दो मुगलों ने राणा प्रताप से युद्ध किया। तब प्रताप और शक्तिसिंह ने इन दोनों को मार गिराया। शक्तिसिंह ने प्रताप को आवाज दी कि ओ नील घोड़े के सवार, पीछे देखो। ' तब राणा ने कहा-'महोदर शक्तिसिंह हितैषी है। इसी कारण शक्तिसिंह का वंश राणा का प्रिय बना। ' (रा० प्र० सर्ग ४, श्लो २६-३०)। इस लेखक ने उक्त घटना को स्वप्रणीत अमरकाव्य (सर्ग १७ श्लोक ३१-३४) में भी लिया है। तब से ही यह कथानक प्रचलित हुआ जान पड़ता है। टाड ने भी इस कथानक को विस्तार से लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि- शक्ता अपने व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रताप को छोड़कर अकबर की सेवा में जा रहा था और इस युद्ध में भी वह उसी की तरफ से लड़ा था, परन्तु दो सबल मुगल सवारों को अपने घायल भाई का पीछा करते देखकर

उमर दिल में भ्रातृ प्रेम उमड़ उठा, जिससे वह उन (मुगलों) के पीछे हो लिया और उन्हें अपने भाले से मार डाला। इस समय दोनों भाई एक दूसरे को गले लगाकर मिले। वहीं घायल चेटक मर गया जहा उसका चबूतरा बनाया गया फिर शक्ता ने उसे अपना घोड़ा दिया। (एनल्स भाग,१ पृ ३८०)

वस्तुत यह कथा इतिहास सिद्ध नहीं है। शक्तिसिंह (या शक्ता) उदयसिंह के चौबीस पुत्रो में से दूसरे नम्बर पर था।[1] प्रताप के साथ शक्तिसिंह की शिकार सबधी लड़ाई का कथन भी मनगढ़त है।[2] रणछोडभट्ट ने इस युद्ध के 100 वर्ष बाद अपने ग्रंथ लिखे थे, उस अन्तराल में कई अनिश्चित बातें प्रसिद्ध हो चुकी थी। किसी भी फारसी तवारीख में शक्ता का इस युद्ध के समय बादशाही सेना में होना नहीं लिखा है। शक्ता अपने पिता उदयसिंह से नाराज होकर अकबर के पास चला गया था। बाबू रामनारायण दूगड़ लिखते हैं- कहते हैं कि ज्योतिषियों ने शक्तिसिंह के लक्षण अनिष्टकर महाराणा (उदयसिंह) के मन में सन्देह डाल दिया था, इससे उन्होंने शक्तिसिंह को मरवा डालने के प्रयत्न किये फिर वह रूठ कर बादशाही चाकरी में चला गया था।' [3]

अबुलफजल 'अकबरनामा' में लिखता है- मुकाम धौलपुर में राणा उदयसिंह का बेटा शक्तिसिंह बादशाह के साथ था। बादशाह ने उससे पूछा कि राणा ने अब तक खिदमत कबूल नहीं की है इसलिये अगर उस पर चढ़ाई की जाय तो तू क्या मदद करेगा? शक्तिसिंह ने बादशाह के सवाल पर कुछ जवाब नहीं दिया और दूसरे ही दिन रुखसत हासिल किये बिना चित्तौड़ की तरफ कूच किया। उसने सोचा कि शायद मेरे कारण लोग यह शक करेंगे कि यही बादशाह को चित्तौड़ पर चढ़ा लाया है। उसकी ऐसी हरकत से बादशाह बहुत नाराज हुआ और हाड़ोती फतह करता शिवपुर को लेता हुआ चित्तौड़ की तरफ बढ़ा।' [4]

कुंवर शक्तिसिंह धौलपुर से सीधा चित्तौड़ पहुचा और अकबर के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के दृढ़ निश्चय की सूचना महाराणा उदयसिंह को दी। तब सब सरदार बुलाये गये। उनकी सलाह पर राठौड़ जयमल और पत्ता सीसोदिया को दुर्ग की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा उदयसिंह अपने परिवार और अन्य

---

१ टॉड 'एनल्स' भाग १ पृ ३८२

२ वही पृ २८२-२८६

३ बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नाकर, प्रथम भाग उत्तरा०,पृ ११०

४ अकबरनामा का एच० बवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद जिल्द २,पृ ४६०-६० वीरविनोद, भाग २, पृ ७३ ७४

सरदारो व खजाने सहित मेवाड के पहाड़ों मे चला गया तथा वहा आकर बाहर से उसने सघर्ष की शुरुआत की।

शक्तिसिंह के चितौड़ पहुचने पर दुर्ग के द्वार नही खोले गये। मुगलो के साथ सम्पर्क मे रहने के कारण शक्तिसिंह पर विश्वास करना सभव नहीं था इस प्रकार उसे दुर्ग के अन्दर नही लिया गया।

शक्तिसिंह ने अकबर के आक्रमण का समाचार भीतर भिजवा दिया।[1] शक्तिसिंह के देशप्रेम के इस उदाहरण ने अवश्य ही बाद मे महाराणा प्रताप को उसके प्रति आकर्षित किया होगा और इसलिए सभवत उसको अपने यहा बुला लिया होगा। बाबू रामनारायण दूगड ने लिखा है- ' शक्तिसिंह भीडर के खानदान का मूल पुरुष हुआ, शक्तिसिंह के पैदा होने पर ज्योतिषियो ने उसे मेवाड की खराबी करने वाला बतलाया था, इसलिये महाराणा ने उसे मार डालने की आज्ञा दी, परन्तु सलुम्बर के रावत साईदास ने उस के प्राण बचाये, महाराणा से अर्ज की कि मेरे पुत्र नही इसलिये यह बालक मुझको बख्श दीजिये। महाराणा उदयसिंह का देहान्त होने पर महाराणा प्रतापसिंह ने अपने भाई शक्तिसिंह को, जो बादशाह अकबर की चाकरी मे चला गया था पीछे अपने पास बुला लिया परन्तु थोडे ही अर्से म दोनों भाईयो का मेल टूट गया और शक्तिसिंह फिर मेवाड से बाहर किया गया, तब वह पीछा बादशाही सेवा म जा रहा।[2]

इसके बाद शक्तिसिंह मुगल दरबार म बना रहा। अकबर न उसे मनसब दिया था। 'अकबरनामा' म लिखा है- कि अकबर ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष(१६०५ ई०) मे अनेक सरदारो के मनसब मे वृद्धि की थी, इनमे शक्तिसिंह का मनसब भी बढाकर १६०० जात और ३०० सवार कर दिया गया था।[3] शक्तिसिंह को मुगल बादशाह की ओर से भसरोडगढ की जागीरी प्रदान की गई थी। वही उसकी मृत्यु हुई। बाद म सन् १६१५ ई मे मेवाड मुगल सधि होने पर भसरोडगढ को मेवाड मे सम्मिलित किया गया।[4]

---

१ डा० देवीलाल पालीवाल प्राचीन डिंगल काव्य मे महाराणा प्रताप' भूमिका पृ ६

२ बाबू रामनारायण दूगड राजस्थान रत्नाकर(मेवाड का इतिहास) पृ २१९

३ अकबरनामा जिल्द ३, पृ ८३९ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान्, भाग १ पृ ४७३

४ वीरविनोद, भाग २ पृ २४६

अतएव मानसिंह की सेना मे शक्तिसिंह का होना और घायल प्रताप के युद्ध मत्र से निकलने पर दो मुगलों को मार कर उसकी रक्षा करना और मृत चेतक के स्थान पर अपना घोड़ा देकर प्रताप की मदद करना आदि बातें मनगढंत हैं। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,[1] डॉ० रघुवीरसिंह [2] डा० गोपीनाथ शर्मा [3] आदि प्रसिद्ध इतिहासकार भी इस कथानक को अनैतिहासिक मानते हैं।

इस प्रकार यह तथ्य स्वीकार करने मे आशंका शेष नहीं रहती की राणा प्रताप को घायल अवस्था मे युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाने और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुंचाने मे भामाशाह और ताराचन्द ने ही बुद्धिमत्ता पूर्ण दूरदर्शिता का परिचय दिया। प्रताप के लौटने के बाद उसके सैनिक भी लौट आये। प्रताप के सब बड़े सरदार तब तक मारे जा चुके थे। ये दोनों भाई ही बच सके।

इस युद्ध में इन दोनों भाईयों ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की और राणा प्रताप के उत्तम सहायक प्रमाणित हुए। युद्ध के प्रथम दौर के समय राणा की सेना को जो विजय प्राप्त हुई उसका श्रेय राजा रामसिंह तंवर के साथ भामाशाह और ताराचन्द को मिलता है। इसका उल्लेख फारसी इतिहासकार अल बदायूनी और अबुलफजल ने भी किया है। [3]

'प्रधान' का पद प्राप्त होना-

हल्दीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप के अनेक विश्वसनीय वीर सरदार मारे जा चुके थे। जो बचे थे वे बहुत थोड़े थे। भामाशाह जैसे अनन्य और योग्य व्यक्ति को पहचान कर व्यवस्था और सैनिक क्षमता की दृष्टि से उपयोगी मानकर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना 'प्रधान' बनाया तथा रामाशाह महासहाणी को इस पद से हटा दिया। इस संबंध में एक दोहा प्रसिद्ध है-

"भामो परधानो करै रामो कीधो रद्द।
धरची बाहर करणनूं मिलियो आय मरद्द।।'

---

१ डॉ० ओझा, 'राज० का इति०' जिल्द २,पृ ७४१ ४२ पर पाद - टिप्पणी।

२ डॉ० रघुवीरसिंह 'राणा प्रताप' पृ २९ पर पाद टिप्पणी।

३ डॉ० गोपीनाथ शर्मा, 'राजस्थान का इतिहास' भाग १, पृ २८९

4 अलबदायूनी -"हमारी जो सेना पहले हमले म ही भाग निकली थी नदी (बनास) को पार कर ५ ६ कोस तक भागती ही रही(मुन्तखबउत तवारीख)। अबुलफजल-" सरसरी तौर से देखने वालों को तब राणा की जीत होती दिखाई दे रही थी।"(अकबरनामा)।

पश्चात् भामा "प्रधान गिरी करता है "ामा को दूर किया गया। देश की तम्पदारी करने के लिए यह मन्त्र आकर मिल गया।

महाराणा ने भामाशाह को यहसम्मान देकर समयोचित सूझबूझ का परिचय दिया। मेवाड की अस्थिर और नष्ट होती हुई राजनैतिक और सामाजिक दशा को उबारने के लिए भामाशाह जैसे नीति निपुण, उदार, त्यागी, निर्लोभी और पूर्ण विश्वसनीय व्यक्ति के इस मन्त्रि और प्रशासनिक सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया जाना अत्यत आवश्यक था।

भामाशाह ने हल्दीघाटी युद्ध म अपनी सैनिक कुशलता का परिचय दिया था परन्तु प्रधान के पद पर रहते हुए उसने अनेक बार अपनी प्रशासनिक शक्ति और प्रबन्ध कुशलता को प्रदर्शित किया। यन्त्र न े वह श्रेष्ठ भवन निर्माता भी सिद्ध हुआ।

हल्दीघाटी युद्ध १८ जून १५७६– ज्येष्ठ शुक्ल २ स १ ३३ को लडा गया। इसके ठीक बाद भामाशाह को प्रधान बना दिया गया क्योंकि भाद्रपद सुदि ५ स १ ३३ (अगस्त १५७६) के सयाणा गाव के ताम्रपत्र मे, जो कुम्भलगढ म महाराणा प्रताप के आदेश से दिया गया था भामाशाह का उल्लेख है जिसने इसे जारी करवाया था। अत स्पष्ट है कि अगस्त १५७० तक भामाशाह 'प्रधान नियुक्त किया जा चुका था। वैसे भामाशाह को महाराणा प्रताप के राज्यारोहण के काल से ही कोषाधिकारी और आर्थिक प्रबन्ध की जिम्मेदारी सौंप दी गई थी।[1]

जब भामाशाह को प्रधान का पद सौंपा गया लगभग उसी समय उसके भाई ताराचन्द को गोडवाड के विस्तृत भूभाग का स्वतत्र गवर्नर नियुक्त किया गया।

प्रजापालन एव प्रबंध

मुगल बादशाह अकबर न मेवाड पर अधिकार करने के लिए मार्च 1578 ई म शाहबाजखा को कई अमीरो और बडी सेना के साथ भेजा। उस समय महाराणा कुम्भलगढ म रहता था। अत शाहबाजखा न सारी शक्ति कुम्भलगढ को घेरने

---

१ डा रघुवीरसिंह का मत है कि- मेवाड राज्य के कोष तथा आर्थिक मामलो का कार्यभार प्रताप के राज्यारोहण के समय से ही भामाशाह के हाथ म रहा। अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महासहाणी के अधीन थे। प्रताप द्वारा दिए गए ताम्रपत्र आदि म सन 1577 के उत्तरार्द्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है। सन् १५७८ म रामा महासहाणी के स्थान पर भामाशाह को मेवाड राज्य का प्रधानमत्री नियुक्त किया गया। प्रताप के देहावसान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा। (महाराणा प्रताप पृ ६०)।

म लगाई सेना ने नाडोल और केलवाडा की ओर नाकेबन्दी करके किले के समस्त रास्ते रोक दिये और रसद का अन्दर पहुचाना कठिन हो गया। तब सरदारों के आग्रह पर महाराणा ने राव अक्षयराज सोनगरा के पुत्र भाण को वहा किले की रक्षा का दायित्व सौंपकर स्वयं किले से निकलकर राणपुर चला गया और वहा से पहाडी रास्ते से होकर ईडर राज्य मे 'चूलिया' नामक गाव में पहुच गया। 3 अप्रैल 1578 को कु भलगढ मुगलो के कब्जे म चला गया।

इस समय प्रधान भामाशाह भी कुभलगढ म ही रहता था। वह घेराव होने से पहले ही मेवाड राज्य के प्रमुख सरदारो और कु भलगढ की प्रजा को लेकर मालवे में 'रामपुरा' की ओर चला गया। वहा के राव दुर्गा चन्द्रावत (सीसोदिया) ने उन सबका बहुत सत्कार किया और सुरक्षा प्रदान की।[1]

अकबर ने शाहबाजखा को निरतर तीन बार मेवाड-अभियान के लिये भेजा। प्रथमबार अक्टूबर १५७७ से मई १५७८ तक दूसरी बार दिसबर १५७८ से अप्रल १५७९ तक तथा तीसरी बार नवम्बर १५७९ से मई १५८० तक वह मेवाड म सनिक कायवाही करता रहा।

मालवा को लूटना

१५७८ ई म रामपुरे मे अपनी प्रजा का बदोबस्त करने के बाद भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द वहा से लौटे। इस समय शाहबाजखां और अय मुगल सेनानायक मेवाड से चले गये थे। तब मेवाड की सेना को साथ लेकर उन दोनो ने अकबर के सूबा मालवे में लूटमार मचायी तथा वहा से दण्ड के रूप मे 25 लाख रुपये और बीस हजार अशर्फिया प्राप्त की। यह बडी रकम वसूलकर गुजरात के चूलिया ग्राम (ईडर) पहुचकर उन दोनो भाईयो ने इसे महाराणा प्रताप को भेंट की।[2] इस राशि से प्रताप को अपनी सेना को पुन सगठित करने मे मदद मिली और उसने आकर मेवाड विजय का अभियान प्रारम्भ किया। कुभलगढ हाथ से चले जाने क बाद महाराणा काफी निराश हो चुका था। इन दोनो भाईयो की इस वतनदारी से उसे पुन बल मिला।

अक्टूबर १५८० मे बरामखा के पुत्र मिर्जा खानखाना को अकबर न अजमेर के सूबेदार पद पर नियुक्त किया। इस मेवाड क मामले म सनिक अभियान न चलाने का सभवत आदेश दिया गया था। अत १५८० से १५८४ ई० के अतरवर्ती चार वष के काल में मेवाड में प्राय शान्ति बनी रही।[3] इस समय प्रताप को अपनी

१ वीरविनोद, भाग २ पृ १५७
२ वीरविनोद भाग २, पृ १५७
३ डा० रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, पृ ४१

सनिक कायवाहियों कर मेवाड पर पुन अधिकार करने का मौका मिला ।

दिवेर पर अधिकार

मेवाड लौटने पर महाराणा ने पुन स यसगठन किया। सबस पहले दिवेर के शाही थाने पर महाराणा ने आक्रमण किया यह कु भलगढ से ४० किलोमीटर उत्तरपूव में अरावली पवत श्रेणी की एक घाटी के सिरे पर स्थित है। इससे इसको सैनिक दृष्टि से बडा महत्व था। इस थाने पर सु तानखा नामक मुगल सेनानायक नियुक्त था। प्रतापसिंह के साथ भामाशाह और उसके साथी भी थे। इस लडाई में कु वर अमरसिंह ने वहा के थानेदार सु तानखा पर बर्छे से वार कर उसकी छाती चीर दी। वह घाडे सहित मारा गया। थाने के अन्य लोग भी मारे गय। कुछ भाग छूटे। बहलोलखां नामक मुग को महाराणा ने तलवार के एक ही वार म घोडे सहित काट डाला। इस प्रकार दिवेर की नाल पर महाराणा का अधिकार हो गया। इस आक्रमण म भामाशाह की सैनिक कायवाही प्रशसनीय रही। यह विजय मुख्यतया भामाशाह और उसके साथियों की मदद स प्राप्त हुई थी।

टॉड ने दिवेर की लडाई की मेराथान के युद्ध से तुलना की है।[2] मेराथान के युद्ध का यूरोप के इतिहास म महत्वपूर्ण स्थान है।

१५७८ के वर्षाकाल के अत म प्रताप ने मेवाड म स्थित अनेक शाही थानों को नष्टकर अपने अधिकार मे कर लिया

बादशाह के प्रलोभन को ठुकराना

मुगल बादशाह अकबर की नीति रही थी कि वह शत्रु को कमजोर करने के लिये उसके खास-खास व्यक्तियो सरदारो और पदाधिकारियो को धन और जागीर का लालच देकर अपनी ओर मिला लेता था। कभी भेदनीति अपनाकर एक राजपूत को दूसरे राजपूत के विरुद्ध उच्च मनसब व प्रतिष्ठा देकर अपना सहयोगी बना लेता था। उसने राजपूत राज्यो में आतरिक प्रशासन करने वाल पदाधिकारियों को भी इसी प्रकार अपन दरबार म बुला कर सम्मान दिया। बाकानेर के प्रोमवान जाति के बच्छावत कमचद को अपने साथ बैठाकर और दरबार म स्थान देकर अपना कृपापात्र बना लिया था। इसी प्रकार मेवाड राज्य के प्रधान भामाशाह को भी भेद-नीति म तोडने का उसने प्रयास

१ वीरविनोद भाग २ पृ १५८, डा के आर का,नगो लिखते हैं - In the last fight of Pratap against the mughals, Bhamashaha took a prominent part of the battle of Diver along with the Chundawats and Sakhtavats (Studies in Rajput History p 52)

२ Tod 'Annals and Antiquities of Rajasthan' part I p 278.

किया। जब भामाशाह मालवे की ओर गया हुआ था, तब उसने मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना को सेना देकर मालवे की ओर भेजा। उसने जाकर भामाशाह से भेंट की। खानखाना ने समझा बुझाकर और ऊंचे पद का लोभ देकर भामाशाह को बादशाह की सेवा में लाने का प्रयत्न किया। परन्तु भामाशाह ने इसे नामंजूर कर दिया।[1] उस समय मेवाड़ राज्य एवं उसके स्वामी महाराणा प्रताप की बड़ी संकटावस्था चल रही थी। मेवाड़ में प्रशासन अस्तव्यस्त हो चुका था आर्थिक और सैनिक स्थिति बिगड़ चुकी थी। ऐसी संकट की घड़ी में भामाशाह ने वैभवशाली जीवन के प्रलोभन को ठुकरा कर अपनी परम देशभक्ति एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

चावंड में नयी राजधानी कायम करना --

इस समय मेवाड़ की दोनों राजधानियां चित्तौड़गढ़ और कुम्भलगढ़ मुगलों के अधिकार में थी। कुंभलगढ़ पर शाहबाजखां ने अधिकार कर लिया था। परन्तु महाराणा वहां से निकलकर पहाड़ों में चला गया था।[2] अतः वहां शाही सेना के कुछ सैनिक छोड़कर स्वयं शाहबाजखां गोगून्दा गया, फिर उदयपुर आया। दोनों जगहों पर उसका आसानी से कब्जा हो गया। फिर वह बांसवाड़ा और मालवा की ओर चला गया।[2] दिवेर की नाल पर कब्जा करने के बाद महाराणा अपने साथियों के साथ कुंभलगढ़ की ओर बढ़ा। प्रधान भामाशाह उसके साथ था। हम्मीरसर नामक तालाब पर डेरा डाला गया, यह तालाब कुंभलगढ़ के समीप है। महाराणा के आगमन का समाचार पाकर कुंभलगढ़ पर स्थित मुगल सैनिक भाग गये। कुंभलगढ़ पर महाराणा का आसानी से अधिकार हो गया। वहां कि सुरक्षा का प्रबन्ध करके महाराणा ओबरा ग्राम में ठहरा वहां से आकर पर अधिकार कर चावंड में निवास किया। जब छप्पन के राठौड़ों ने अधीनता नहीं मानी तब महाराणा ने लूणा- चावंडिया राठौड़ को चावंड से निकाल कर

1 वीरविनोद, भाग २ पृ १५८ डॉ के आर कानूनगो लिखते हैं - The astute politician and diplomat Khan Khana Abdur Rahim tried hard to seduce Bhama Shah to the service of the Emperor by alluring offers but failed (Studies in Rajput History, p 52)

डॉ रघुवीरसिंह का विचार है कि -- सन् १५८१ के अंत तक उस (प्रताप) ने कहीं भी कोई सैनिक कार्यवाही नहीं की। प्रताप के इस शांतिपूर्ण व्यवहार से प्रेरित होकर मिर्जा खां ने इस बार भामाशाह से संपर्क साधा और उससे आग्रह किया कि वह प्रताप को समझा बुझाकर अकबर के दरबार में जाने को राजी करे। परन्तु भामाशाह ऐसा करने को तैयार नहीं हुआ (महाराणा प्रताप, पृ ४२)

2 डॉ० ओझा, उदयपुर राज्य का इति० जिल्द २, पृ ७६०

वहां अधिकार कर लिया। इस प्रकार १५८२ ई० में महाराणा ने चावड म नयी राजधानी स्थापित की। चावड म महाराणा के बनवाए हुए महलो के खडहर और चामु डामाता का मंदिर अब भी विद्यमान है।[1] वहा रहत हुए महाराणा न बासवाडा और डू गरपुर जो बादशाही अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पर सनिक अभियान भेज उनको अपने अधीन बनाया।[2] इस समस्त कार्यवाही में भामाशाह उसके साथ रहा। चावड म महाराणा के महलो के सामने नाके की ओर भामाशाह की हवेली के खण्डहर अब भी मौजूद हैं।

मेवाड पर पुन अधिकार

दिसम्बर १५८४ मे अकबर ने जगन्नाथ कछवाहा को सैन्य सहित मेवाड म भेजा। यह अगस्त १५८५ पर्यन्त मवाड म रहा। उसने कई बार प्रताप के निवासस्थान पर आक्रमण किया प्रताप द्वारा अधीन किये गये सब प्रदेशो पर पुन विजय प्राप्त की और मेवाड को बर्बाद करने की कई कार्यवाहिया कीं। परन्तु वह प्रताप को पकडने मे सफल नहीं हो सका, फिर भी प्रताप को इस अवधि मे गभीर परिस्थितियो का सामना करना पडा उसे और उसके साथियो को निरतर पर्वतीय क्षेत्रो म यहा वहा घूमना पडा। जगन्नाथ कछवाहा दो वर्ष तक मेवाड म रहा। अगस्त १५८५ मे अकबर पजाब और काबुल की तरफ चल पडा, तब जगन्नाथ कछवाहा को भी उसने मेवाड से बुला लिया।

उसके चले जाने के बाद मवाड के शासक और यहां की प्रजा ने चन की सास ली। इसके बाद प्रताप की मृत्यु (१५९७ ई) पर्यन्त ११ वर्ष के अन्तराल म अकबर ने मेवाड पर कोई सनिक अभियान नहीं भेजा। बादशाह इस अवधि म उत्तर पश्चिमी सीमान्त म अफगानों के साथ युद्धों मे व्यस्त रहा अत उस मेवाड की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। महाराणा नें इसके बाद एक ही वर्ष (१५८६ ई) म चित्तौडगढ और मांडलगढ को छोडकर सारे मवाड प्रदेश पर पुन आधिपत्य कर लिया। इस समग्र कार्य मे भामाशाह के

---

१ वीरविनोद भाग २, पृ १५९

२ वीरविनोद, भाग २ पृ १५८-१५९ डा ओझा राजपूताने का इतिहास जिल्द २ पृ ७६१। इस लडाई में चौहानों ने प्रतिरोध किया। चौहानों के सरदार रावत भाण (सारणेश्वर)को सना देकर भेजा गया। सोमनदी पर लडाई हुई। इसमें रावत भाण गभीर घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहानों की हार हुई। डू गरपुर और बासवाडा के रावलो ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली।

योगदान को स्वीकार करते हुए कविराज श्यामलदास ने लिखा है- "इन महाराणा ने फिर फौज इकट्ठी करके शाही थानों पर हमला किया जो उनके प्रधान भामाशाह की हिम्मत से हुआ था। चित्तौड़, माण्डलगढ़ और अजमेर के सिवाय कुल बादशाही थाने उठा दिये गये"।[1]

मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था को लागू करने में भी प्रधान भामाशाह का बहुत योग रहा। उसके काल में उजड़े हुए मेवाड़ में पुनः बस्तियां बसाई गई, खेती की व्यवस्था की गई, व्यापार को ठीक किया गया, और मार्गों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। भामाशाह द्वारा महाराणा प्रताप की आज्ञा से जारी किए गए ताम्रपत्रों, परवानों आदि से इस बात की स्पष्ट जानकारी मिलती है। भामाशाह जैसे अनुभवी और कुशल प्रबंधक के लिए यह सब सहज और उपयुक्त था।

आर्थिक सहयोग—

चित्तौड़गढ़ पर १५६८ ई० में महाराणा उदयसिंह के काल में ही मुगलों का अधिकार हो चुका था। १५७८ ई० में मुगल सेनापति शाहबाज खाँ ने कुंभलगढ़ गोगूंदा और उदयपुर पर भी आधिपत्य कर लिया था, तब महाराणा प्रताप को अपने परिवार और साथियों के साथ पहाड़ों और जंगलों में सुरक्षा हेतु भटकते रहना पड़ा। उसे सात बार ऐसे मौके आये जब खाना छोड़कर भागना पड़ा। जंगल में कभी सावां कोदों जैसे तृण धान्य का भोजन करके निर्वाह करना पड़ा। विभिन्न युद्धों में उसके अच्छे सैनिक और अनेक सरदार मारे जा चुके थे। मुगलों ने देश को उजाड़ दिया था बस्तियां नष्ट कर दी थीं कृषि वाणिज्य-व्यापार नष्ट हो गया था मेवाड़ के अपार धन जन की हानि हुई थी। महाराणा प्रताप ने इन सारी परिस्थितियों में आगे संघर्ष को जारी रखने में अपने को असमर्थ पाकर मारवाड़ होकर सिंध की ओर जाने का निश्चय किया हो अथवा मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने में अपना हित समझा हो। क्योंकि धन के अभाव में नवीन सैन्य संगठन कर मेवाड़-विजय के अभियान को गति देना असम्भव जान पड़ने लगा। ऐसी विषम अवस्था में प्रधान भामाशाह ने विपुल धनराशि लाकर महाराणा प्रताप को भेंट की, जिसके द्वारा पच्चीस हजार सैनिकों का बारह वर्ष पर्यन्त निर्वाह किया जा सकता था। इस धन से ही प्रताप ने पुनः सेना एकत्रित की और मेवाड़ विजय में सफल हुए।[2] भामाशाह के इसी सामयिक अर्थ सहयोग

१ वीरविनोद भाग २ पृ १६३-१६४

२ जगदीशसिंह गहलोत, "राजपूताने का इतिहास", भाग १ पृ २३७

को मेवाड म चिरस्मरण किया जाता रहेगा। यह घटना १५८० ई के लगभग की होनी चाहिए। भामाशाह द्वारा समर्पित किया गया धन मेवाड का ही खजाना था अथवा भामाशाह और उसके पूवजो द्वारा अर्जित की गई निजी सम्पत्ति थी, इस सम्बन्ध में विद्वानो के दो विभिन्न मत हैं।

कनल जेम्स टाड ने लिखा है- शत्रु के प्रवाह को रोकने मे असमथ होने के कारण उस (प्रताप) ने अपने चरित्र के अनुकूल एक प्रस्ताव किया और तद नुसार मेवाड एव रक्त से अपवित्र चित्तौड को छोडकर सिसोदियो को सिन्धु के तट पर ले जाकर वहा की राजधानी सोगडी नगर में अपना लाल झण्डा स्थापित करने एव अपने तथा अपने निदय शत्रु (अकबर) के बीच मे रेगिस्तान छोडने का निश्चय किया। वह अपने कुटुम्बियो और मेवाड के दृढ और निर्भीक सरदारो के साथ जो अपमान की अपेक्षा स्वदेश निर्वासन को अधिक पसन्द करते थे अरवली पवत से उतर कर रगिस्तान की सीमा पर पहुचा। इतने म एक ऐसी घटना हुई जिससे उसको अपना विचार बदलकर अपने पूवजो की भूमि म ही रहना पडा। यद्यपि मेवाड की ख्यातो म असाधारण कठोरता के कामो का उल्लेख मिलता है तो भी वे अद्वितीय राजभक्ति के उदाहरणो से खाली नही हैं। प्रताप के मत्री भामाशाह ने, जिसके पूवज बरसो तक उसी पद पर नियत रहे थ, इतनी सम्पत्ति राणा को भेंट कर दी कि जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ वष तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह मवाड के उद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है।[1]

---

१ Col James Tod- ' Unable to stem the torrent he had formed a resolution worthy of his character he determined to abon don Mewar and the blood stained Cheetore (no longer the stay of his race) and to lead his Seesodias to the Indus plant 'the crimson banner on the insular capital of the Sogdi and leave a desert b tween him and his inexorable foe With his family and all that was yet noble in Mewar, his chiefs and vassals a firm and intrepid band who preferred exile to degradation, he descended the Aravulli, and had reached the confines of desert when an incident occurred which made him change his measures and still remain a dweller in the land of his forefathers If the historic annals of Mewar record acts of unexampled sev rity, they are not without instances of *

इस सबंध मे डा गौरीशकर हीराचन्द ओझा का मन्तव्य है कि भामाशाह द्वारा लाकर प्रताप को भेंट की हुई सम्पत्ति उसकी या उसके पूवजो द्वारा निजी तौर पर अर्जित की हुई नहीं थी। अपितु वह मेवाड का ही चित्तौडगढ से स्थानान्तरित किया हुआ खजाना था, जो अन्यत्र छिपाकर रखा गया था और जिसे वह अकेला ही जानता था। 'महाराणा कुभा और सागा की सचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढाई के पूव ही मुसलमानो के हाथ न लगे इस विचार से चित्तौड से हटाकर पहाडी प्रदश में सुरक्षित की गई थी। इसी से बहादुरशाह और अकबर को चित्तौड विजय पर कुछ भी द्रव्य वहा से हाथ न लग सका। भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानो मे गुप्त रूप से रखा जाता था, जिसका ब्योरा वह (भामाशाह) एक बही म रखा करता था, और आवश्यकता पडने पर उन स्थानो मे द्रव्य निकाल कर लडाई का खच चलाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा अमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार वही करता रहा। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनो म उसने उपयुक्त वही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसम राज्य के खजाने का ब्योरेवार विवरण है इसलिय इसको महाराणा के पास पहुचा देना। [1]

डा ओझा ने विभिन्न प्रमाण जुटाकर यह प्रमाणित किया है कि महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्तिशाली था और उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी। इसी से वह तथा उसका पुत्र दोनों बरसा तक बादशाह से लडने मे समथ हुए।[2]

कविराजा श्यामलदास ने भी लिखा है "भामाशाह बडी जुरअत का आदमी था महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के २॥

* unparalleled devotion The Minister of Pertap whose ancestors had for ages held the office placed at his prince s disposal their accumulated wealth which, with other resources is stated to have been equivalent to the maintenace of twenty five thousand men for twelve years The name of Bhama Sah ispreserved as the saviour of Mewar ('Annals and Antiquities of Rajasthan, Volume I, P 275)

१ डॉ ओझा-' राजपूताने का इतिहास , जिल्द २ पृ १३०२ १३०३

२ वही, जिल्द २, पृ ७७४ ७७८

तथा ३ वर्ष तक प्रधान रहा उसने ऊपर लिखी हुई बड़ी बड़ी लड़ाईयों में हजारों आदमियों का खर्च चलाया। । इसने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री को एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी, और कहा कि इसमें मेवाड़ के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है जिस वक्त तकलीफ हो यह बही उन (महाराणा) को नजर करना। यह खैरख्वाह प्रधान इस बही के लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा।'[1] कविराजा श्यामलदास ने भी कहीं भामाशाह द्वारा स्वयं की सम्पत्ति मेवाड़ के उद्धार हेतु भेंट करने की बात स्वीकार नहीं की है।

डा कालिकारंजन कानूनगो का विचार है कि प्रताप के भाग्य के संकट के वर्षों में भामाशाह द्वारा लाकर दिया हुआ धन अकबर के मालवा सूबे को लूटकर प्राप्त किया गया था।[2]

परन्तु परिस्थितियों को देखते हुए उपर्युक्त मत समीचीन नहीं जान पड़ता।
१ यह सम्भव नहीं कि अपने ही खजाने का विवरण महाराणा प्रतापसिंह को न मालूम रहा हो और उस उसका मंत्री भामाशाह ही जानता हो। मेवाड़ मे प्रचुर सम्पत्ति थी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता यदि ऐसा नहीं होता तो कुम्भा के काल मे महान् निर्माणकार्य नहीं हो पाते प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान तो हल्दीघाटी युद्ध(१५७६ई)के कुछ दिनों बाद बनाया, यह इतिहास का सत्य है। जबकि चित्तौड़गढ़ का पतन १५६८ ई मे महाराणा उदयसिंह के काल मे ही हो चुका था। अत वहां से रक्षित खजाना या तो कुम्भलगढ़ पहुंचा दिया गया था, या अन्य किसी सुरक्षित स्थान पर। उस समय से ही भामाशाह को खजाने का ज्ञान होना भी ठीक प्रतीत नहीं होता। भामाशाह उदयसिंह के काल मे ही किसी महत्वपूर्ण पद पर रहा हो ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता। स्वयं प्रताप भी नहीं जानता था कि वह राजगद्दी पर बैठाया जायगा।

२ विक्रमादित्य के काल मे १५३२ ई मे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ को आ घेरा तब भारी धनराशि देकर रानी कर्मवती ने उससे संधि कर ली। कुछ समय बाद बहादुरशाह ने पुन चित्तौड़ को घेर लिया और उस समय

१ वीरविनोद भाग २ पृ २५१

२ Dr K R Qanungo - During the critical years of Pratap s fortune Bhama Shah raided Akber s subha of Malwa' and brought a booty of twenty lakhs of ruppees and twenty thousand ashrafis to the Maharana ' ('Studies in Rajput History, P 52)

'चित्तौड का दूसरा शाका' (जौहर) हुआ। इस प्रकार बाहरी आक्रमणों से मेवाड को अपार जन धन की हानि हुई थी।

प्रताप ने मुगल-संघर्ष के काल मे मुगलों को रसद न पहुचे इस इरादे से सारे मेवाड क्षेत्र मे बस्तियों को खाली करके उन्हें जगलो और पहाडो म स्थानान्तरित करा दिया था उसने अपनी प्रजा मे यह भी आदेश प्रसारित करा दिया कि कोई भी मदानी भाग में खेती न करे खेती करने पर उसे कठोर दण्ड दिया गया। इन कार्यवाहियों से राज्य की आय का स्रोत नष्ट हो गया। मुगलो के विध्वसक कार्यों से भी राज्य की आय को धक्का लगा। व्यापारिक मार्ग बन्द हो चुके थे और व्यापार-वाणिज्य भी ठप्प हो गया था। ऐसी दशा मे प्रताप के पास राज्य की आय का सग्रह होना सभव नहीं था।

देश की इस आतरिक दु स्थिति का पता उस घटना से भी चलता है कि १६१५ ई में मुगलो के साथ महाराणा अमरसिंह की सधि होने पर कु वर कर्णसिंह उस दिन शाहजादा खुरम के पास गया। "जब शाहजादे ने कर्णसिंह को अपने साथ अजमेर चलने के लिए कहा, तो कर्णसिंह ने अपने मुल्क की बर्बादी व तकलीफों का हाल कहकर जल्दी सफर न कर सकने का उज्र किया। शाहजादे ने ५० ००० रु नकद अपने पास से सफर खर्च के लिए कु वर को दिये, तब कु वर ने अपना सामान दुरुस्त करके शाहजादे के साथ चलने की तैयारी की।"[1]

अवश्य ही महाराणा प्रताप और अमरसिंह के काल में मेवाड की आर्थिक स्थिति बिगड चुकी थी। राज्य का खजाना खाली हो चुका था, मुगलो के साथ सधि होने पर पुन मेवाड का आर्थिक विकास हुआ। महाराणा कर्णसिंह और जगतसिंह के काल मे मेवाड की अच्छी आर्थिक उन्नति हुई। वह शान्तिकाल था। इसी कारण महाराणा जगतसिंह और राजसिंह विभिन्न निर्माण कार्य और दान कर सके। महाराणा राजसिंह द्वारा सिंहासन पर बठने के वष (स १७०९ = १६५२ ई) में एकलिंगजी में 'रत्नों का तुलादान' करना विवादास्पद है। डॉ ओझा ने लिखा है-" उसने (राजसिंह ने)उसी वष के मार्गशीर्ष मास में एकलिंगजी जाकर रत्नों का तुलादान किया। समस्त भारतवर्ष में रत्नों के तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण मिला है।'[2] डॉ ओझा ने भूल से इसे 'रत्नमयी' तुला समझा है जबकि यह तुला रजतनिर्मित थी जिस पर सोना और रत्न जड़े हुए थे।। जगन्नाथराय प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

---

१ वीरविनोद, भाग २ पृ २३८

२ डॉ ओझा, राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ ७७१

वर्षे निद यवरागिणयुते मागशीर्षेपि शुक्ले पचम्या -
मेऽहियो घनकमणिमयी सतुलां राजताख्याम ।
राणा श्री राजसिंह क्षितिपतिमुकुट श्रीजगतसिंहपुत्र
कृत्वा तत्र द्विजाग्र्यान् सपदि विहितवान् राजराजेन्द्रतुल्यान् ॥ 1

राजसिंहकालीन एकलिंग - मंदिर की प्रशस्तिमें भी लिखा है-

" राणा श्री जगतसिंहात्मज श्रीराजसिंहनृपति प्रीत्यैकलिंगाग्रतो रत्नैं पूर्ण- तुलाङ्कती व्यरचयत् सच्चित्रकूटाधिप ॥१८॥

एकलिंग क मंदिर की यह प्रशस्ति स १७०९ की है, वतमान म यह प्रशस्ति राजकीय सग्रहालय उदयपुर म स्थित है (डा ओझा, राज० का इति०, जिल्द २, पृ ८४२ पर पादटिप्पणी)

इस तुला को फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणो म बाट दिया गया था । अत रत्नों के तुलादान वाली बात इतिहास सिद्ध नही है ।

इन प्रमाणो से ज्ञात होता है कि मेवाड राज्य की आतरिक स्थिति बिगड चुकी थी । राज्य का खजाना उस समय खाली हो गया हो तो कोई आश्चय नहीं ।

३ भामाशाह ने यदि मेवाड का ही खजाना लाकर दिया होता तो यह उसका कतव्य था इसके लिए उसके प्रति किसी विशिष्ट आदर या आभार की आवश्यकता नही थी । और, सैनिक अभियानो का सचालन करना 'प्रधान' के दायित्व थ । प्रधान बनने पर वह राज्यकोष स सेना का सचालन करता ही रहा । परन्तु बाद म उसके वशजो को मेवाड के शासको द्वारा जो विशिष्ट सम्मान दिया गया उससे प्रमाणित होता है कि भामाशाह ने ऐसा ही कोई असाधारण काय किया होगा जो अन्य किसी ने नही किया । जसा कि मेवाड म मान्यता प्रचलित रही है भामाशाह न अपनी स्वय की सम्पत्ति महाराणा को समर्पित की थी । यही वह असाधारण काय होना चाहिए जिससे महाराणा अत्यत प्रभावित एव प्रसन्न हुआ । बाद म महाराणा न ओसवालो की जाति में भामाशाह के वशजो को जाति भोज आदि के अवसर तिलक निकालन का सर्वोच्च सम्मान प्रदान करवाया ।

४ भामाशाह का पिता भारमल्ल स्वय धनी व्यक्ति था। प्राय धनी और कत-व्यनिष्ठ व्यक्तियो को राज्य मे बाहर से आमन्त्रित कर उच्चपद दिये जाते थे । राणा सागा न भारमल्ल को अलवर से बुलाकर रणथम्भोर का किलदार नियुक्त

---

१ वीरविनोद भाग २, पृ ३९६ ।

किया था। आर्थिक विपन्नावस्था के समय राज्य के धनी मानी सेठों से धन लेने की परम्परा अब तक प्रचलित रही है। ऐसे मौकों पर यदि स्वयं धनी लोग अपना धन स्वेच्छया दे देवें तो न केवल राज्य के हित में होता, अपितु स्वयं के लिए भी उपयोगी होता। राज्य ही तो धनी लोगों के धन, माल, सम्पत्ति और व्यापार की सुरक्षा का निर्वाह करता था।

५ नागपुरीय लुंकागच्छ की पट्टावली में भी भारमल्ल को अठारह करोड़ की धनराशि का स्वामी बताया है। इससे उसके धनाढ्य होने की सूचना मिलती है।

६ महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को १५५३ ई० में एक लाख का पट्टा प्रदान किया था। इतनी बड़ी जागीरी या तो किसी बड़े सरदार को दी जाती थी, या निकट के रिश्तेदार को या किसी महान्, कर्तव्यनिष्ठ और बहुत धनी व्यक्ति को ही दी जाती थी, जो उसके सम्मान के अनुकूल होती। इस पट्टे के कारण भी भारमल्ल के पास और अधिक धन एकत्र हो गया था।

७ प्रताप ने भामाशाह को मेवाड़ राज्य का प्रधान नियुक्त किया था। प्रधान का कर्तव्य है कि वह राज्य की बिगड़ती दशा को येनकेन प्रकारेण सुधारे। अतः भामाशाह ने राज्य का उद्धार करने के लिए अपनी सम्पत्ति भी अर्पित कर दी हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

८ यदि यह मानें कि भारमल्ल और भामाशाह ने मेवाड़ के उच्चपदों पर रहते हुए धन अर्जित किया हो, तो भी वह मूलतः मेवाड़ की ही सम्पत्ति थी। भामाशाह ने उसे विपत्ति के समय पुनः महाराणा को अर्पित कर अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया था।

९ प्रताप के त्याग, स्वाभिमान और बलिदान से उसका प्रधान भामाशाह प्रभावित हुए बिना नहीं रहा होगा, अतः मेवाड़ के उद्धार के लिए अपनी पारिवारिक व्यक्तिगत सम्पत्ति को भी महाराणा को सौंपकर उसने गौरव का अनुभव किया होगा। उस समय व्यक्तिगत स्वार्थ एवं धन की तुलना में मेवाड़ की स्वतन्त्रता का लक्ष्य महान् था। प्रताप का यश न केवल राजस्थान, अपितु पूरे देश में फैल चुका था।

१० एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ में लिखा है "राणाजी श्री प्रतापसिंघजी नै बिषामाह पातिसाहजी री फौजा जोर दबाया। पवरा नौ वयु ही पहू पे नहीं। तद दीवाण जी कह्यो। हु अहमदनगर र पातिसाही तीरे जासा। तर सौ भामै कह्यो। बारा बरस ताइ पाच हजार घोडा नौ तेल न पावण ताइ धाहाजसी, सौ

हु दावै ही तठा मु देसु । दीवाण इसी मत विचारो '।[1]

इससे प्रकट होता है कि भामाशाह ने स्वय का धन महाराणा को देने का वादा किया।

उपयुक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भामाशाह ने अपनी स्वय की अर्जित पारिवारिक विशाल सम्पत्ति का ले जाकर महाराणा प्रताप को सहर्ष भेंट कर दिया था और उसे मेवाड़ के पुन उद्धार स्वतन्त्र करने के लिए प्रेरित किया। देशभक्त,कर्मवीर मेवाड़ उद्धारक भामाशाह का नाम इसी कारण अमर हो गया।

अहमदाबाद-अभियान

महाराणा प्रतापसिंह की मृत्यु (१५९७ ई) के बाद चावड में मेवाड़ की राजगद्दी पर उसका ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह बैठा। भामाशाह अपनी मृत्यु पर्यन्त महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल के प्रारंभिक ढाई तीन वर्षों तक प्रधान पद पर बना रहा। महाराणा अमरसिंह ने भी पिता की नीति का अनुसरण करते हुए मुगलो के साथ सघर्ष जारी रखा। उसके काल में भामाशाह ने अहमदाबाद पर आक्रमण कर वहां से दो करोड रुपये और बहुत सा सामान प्राप्त कर महाराणा अमरसिंह को भेंट किया। इस घटना का उल्लेख 'खुमाणरासो' मे विस्तार से मिलता है। इसका लेखक जन कवि दौलतविजय था जिसके जन्म का नाम दलपत था। उसने उदयपुर के राणाओ के विषय मे खुमाणरासो नामक राजस्थानी भाषा के विस्तृत काव्य की रचना की है। इसकी रचना महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के राज्यकाल (स १७६७ से १७९० अर्थात १७११ से १७३४ ई) में हुई थी। यद्यपि यह उक्त घटना के लगभग डेढ सौ वर्ष बाद लिखी गई थी, परन्तु इससे अनेक नवीन तथ्यो की जानकारी मिलती है। भामाशाह के सम्बन्ध मे भी उसके अहमदाबाद पर आक्रमण का वर्णन किया है।[2]

---

१ यह हस्तलिखित ग्रथ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे सग्रहित है, ग्रथांक ३५४६४। इस ग्रथ मे प्रताप सबधी कुछ महत्वपूर्ण बातो का वर्णन मिलता है। इस ग्रथ के आधार पर डॉ पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने एक लेख प्रकाशित कराया है, देखें प्रतापस्मृति ग्रथ, पृ 134 135।

२ कप्पड पीया कापडा, लीधो घन दो कोड।
साथ समान किया सहू,समा किया सजोड ॥३५१३॥
अहमदाबाद सु भामो साह अमर पास आयो उछाह।
असी सहस सायें असवार, आए वाए अत न पार ॥३५१४॥
('खुमाणरासो' देखें परिशिष्ट)

'नागपुरीय लुंकागच्छ पट्टावली' से ज्ञात होता है कि भामाशाह लुंकागच्छ का अनुयायी था। उसके गुरु का नाम 'देवागर' था। भामाशाह ने दिगम्बर मतानुयायी नरसिंहपुरा शाखा के अनेक लोगों को अपने मत मे दीक्षित कराया था। बहुत सारा धन देकर उसने १७०० घरों को अपने मत के बना लिया था। उस समय उसके इन प्रयासो से लुंकागच्छ का बहुत फैलाव हुआ और भिण्डर आदि गावो में इस मत के अनुयायी एक लाख चौरासी हजार से भी अधिक श्रावकों के घर बन गये।[1] इस प्रकार भामाशाह ने धार्मिक भावना को प्रदर्शित किया।

लुंकागच्छ के अनुयायी होने पर भी भामाशाह धार्मिक उदार रहा, उसने अनेक वैष्णव शाक्त व अनेक जन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था जो मुस्लिम आक्रमणों के कारण विध्वस हो गये थे।

उदारदानी

भामाशाह उदारमना दानी भी था। वह मुक्तहस्त से चारणों कवियों और अरुरतमन्दो और अन्य लोगो को धन दिया करता था।

डॉ मोहनलाल जिज्ञासु ने लिखा है- 'एक बार भामाशाह ने महाराणा प्रताप को उदयपुर में प्रीतिभोज पर आमन्त्रित किया, जिसमे सब ओसवालों को न्यौता दिया गया। इसमे निमत्रण पाकर कवि शकर भी सम्मिलित हुए। कहते हैं कि भामाशाह ने इन्हें इस अवसर पर एक अमूल्य नग भेंट किया था।" (राजस्थान मे चारणों का डिंगल साहित्य मे योगदान नामक अप्रकाशित शोध-प्रबंध)।

कवि शकर बारहठ चारण जाति का था। इस भोज के अवसर पर इसका बनाया निम्नलिखित दोहा प्रचलित है-

"भोमे जग जिमाडियो, नेवतरिया नव खण्ड।
सिर तपिया धासक तणा काजलियो ब्रह्म ड ॥'

इसका उल्लेख डॉ हीरालाल माहेश्वरी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और

---

१ 'पुन भामाशाहेन दिगम्बरमतगा नरसिंघपोरा स्वपक्षे समानीता। बहुस्व दत्वा १७०० गृहाणि तेषामात्मीयानि कृतानि। भिण्डरकादिपुरेषु तदा च जस श्रावकगृहाणां चतुरशीतिसहस्राधिक लक्षमेकम्।
(नागपुरीय लुंकागच्छीय पट्टावली)

साहित्य नामक शोध-ग्रंथ मे किया है। कहते हैं कि 'मोतीमगरी' के महल में भामाशाह ने एक प्रीतिभोज का आयोजन रखा। इस अवसर पर सब सरदारों की पत्तलों पर दोनो मे मोतियों के पुडिये परोसे गये। भामाशाह ने कई बार ओसवाल न्यात को भोज दिये और 'बावनी' (बावन गांव) जिमायी। कई बार ब्राह्मणों की 'चौरासियां' जिमायी।

अगरचंद नाहटा के संग्रह में सुरक्षित एक गुटके में भामाशाह संबंधी एक गीत मे अंतिम पद्य इस प्रकार मिलता है

'भारमलोत तणो भर मण्डल, स सबुद अचल जय ससार।
सारंग जगड वे सांग रिवा, दीठो भामो जग दातार।।

इस प्रकार भामाशाह की दानवीरता उसके काल में ही प्रसिद्ध हो गयी थी।

निर्माण कार्य

भामाशाह जिस प्रकार वीर और कुशल प्रशासक था, उसी प्रकार वह अच्छा निर्माता भी था। चित्तौड दुर्ग पर कवायद के मदान के पश्चिमी किनारे पर मेगजीन (तोपखाने) के भवन के सामने भामाशाह की हवेली स्थित थी। यह बाद मे महाराणा सज्जनसिंह द्वारा कवायद का मदान बनवाते हुए तुडवा दी गयी थी। अवश्य ही यह हवेली पूर्व में उसके पिता भारमल्ल की रही होगी परन्तु भामाशाह द्वारा उसका विस्तार किया गया हो, तब वह उसके नाम से प्रसिद्ध हो गयी हो। कुछ समय पूर्व यहां 'आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्ट' ने खुदाई कराई थी। इस विशाल भवन की बारादरी वाला भाग और बारह खम्भे अब तक देखे जा सकते हैं।

चित्तौड दुर्ग की तलहटी मे पाडनपोल के पास भामाशाह की 'हस्तिशाला' थी। चावंड में महाराणा प्रताप के महलों के सामने नीचे सडक के दूसरी ओर 'भामाशाह की हवेली' के खडहर आज भी विद्यमान हैं।

चावंड के निकट जावर में भी महाराणा प्रताप कुछ काल पर्यन्त रहा। सुरक्षा और गोपनीयता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थान था। यहां पर भी मोतीबाजार के समीप 'भामाशाह की हवेली' होना बताया जाता है। जावरमाता का मंदिर जो मूल मे ७ वी शती में राजा शिलादित्य के काल में निर्मित हुआ था उसे मालवा के शासक गियासुद्दीन ने नष्ट कर दिया था। सन् १५९३ ई में भामाशाह ने इस देवी मंदिर का भी जीर्णोद्धार कराया था।[1] कहते हैं कि धुलेवस्थित केसरियाजी या ऋषभदेव के मंदिर का जीर्णोद्धार भी भामाशाह ने करवाया था।

---

१ डॉ रघुवीरसिंह, 'महाराणा प्रताप', पृ, ६१

भामाशाह का अन्तिम काल उदयपुर मे व्यतीत हुआ। यहां राजमहलों के पास उत्तर में गोकुलचन्द्रमाजी के मंदिर के समीप एक स्थान 'दीवान जी की पोल' के नाम से प्रसिद्ध है, वह भामाशाह की हवेली ही बताया जाता है। एक पुरानी बही[1] मे उल्लेख है कि महलो के नीचे 'भामाशाह री बाडी' थी, इसकी स्थिति का सही संकेत प्राप्त नहीं हो सका।

महाराणा अमरसिंह के काल में महलो के कुछ अंशों का निर्माण हुआ। इनके निर्माण में भामाशाह का योगदान रहा है। कविराज श्यामलदास ने लिखा है-"महाराणा अमरसिंह ने जिनका प्रधान भामाशाह ओसवाल कावडिया जात का महाजन बड़ा काबिल और बहादुर था उसी के प्रधाने में महलों का अव्वल दर्वाजा, जिसको 'बडी पोल' कहते हैं। और 'अमर महल', जो जनाने महलो के नजदीक है बनवाये थे।"[2]

इस प्रकार भामाशाह ने स्थापत्य और कला के प्रति अपनी रुचि प्रकट की थी।

अंतिम दिन और मृत्यु

भामाशाह के अंतिम दिन संघर्षों की लम्बी दौड के बाद कुछ शांति से गुजरे। महाराणा प्रतापसिंह के काल में ही १५८६ ई० से मुगलो के मेवाड पर आक्रमण बन्द हो गये थे। इस महाराणा की १५९७ ई० में मृत्यु हो गयी। महाराणा अमरसिंह के काल में पुन १६०० ई० में मुगल बादशाह अकबर ने अपने शाहजादे सलीम को सेना सहित मेवाड पर भेजा। सम्भवत तब तक इस कर्मवीर प्रधान भामाशाह की मृत्यु हो चुकी थी। १५८६ से १६०० ई० के मध्यवर्ती शांतिकाल मे राजधानी चावंड और उदयपुर बदलती रही। फिर भी उदयपुर का निर्माण इस अवधि में तेजी से हुआ। भामाशाह इस काम में अग्रणी था।

भामाशाह की मृत्यु ११ जनवरी १६०० ई० (माघ सुदि ११ संवत् १६५६) को हुई। उसके बाद उसके पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने अपना प्रधान बनाया। मृत्यु के समय भामाशाह की आयु ५१ वर्ष ७ माह थी। अत्यंत संघर्षशील जीवन व्यतीत करने के कारण ही वह दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सका। महाराणा प्रताप के साथ उसने भी एक स्वामिभक्त सेवक की तरह हर प्रकार की कठिनाई का सामना किया।

[1] कविराज श्यामलदास ने लिखा है-'इस (भामाशाह) ने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री को एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें

१ यह बही मेरे मित्र डॉ० राजेन्द्रनाथ पुरोहित के निजी संग्रह में सुरक्षित है। पुरोहित-संग्रह, बही सं ५, वि सं १७६४-८१, पृ २२०

२ वीरविनोद, भाग ३, पृ २५१

"जा धन के हित नारि तजै पति,
पूत तजै पितु शीलहि सोई ।
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि,
मित्रता मित्र तजै दुख जोई ।
ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न,
दियो दुख देश के आरत होई ।
स्वारथ अर्प्यं तुम्हरोई है, ।
तुमरे सम और न या जग कोई ।।"

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

/

4- ताराचन्द

भारमल कावडिया के दो पुत्र हुए-भामाशाह और ताराचंद । ताराचन्द भामाशाह का छोटा भाई था, । इसकी माता का नाम कपूरदेवी था ।

भामाशाह के समान ताराचन्द भी वीर, साहसी, त्यागशील और नीति-निपुण कुशल प्रशासक था इसके अतिरिक्त वह कला और साहित्य का अनुरागी और उदार आश्रयदाता भी था । वह महाराणा प्रताप के योग्य और विश्वसनीय अनुयायियों में से एक था ।

जन्म व बाल्यकाल

ताराचन्द भामाशाह से चार वर्ष छोटा था ।[1] वह भी अपने बड़े भाई भामाशाह की भांति महाराणा प्रताप का बालसखा, युद्धसाथी और योग्य सलाहकार था ।

हल्दीघाटी का युद्ध

मुगल बादशाह अकबर की विशाल सेना जिसका नेतृत्व आम्बेर के राजा भगवन्तदास का पुत्र कुंवर मानसिंह कछवाहा कर रहा था, के साथ महाराणा प्रताप की अल्प किन्तु आत्मविश्वास और देशप्रेम की धनी सेना के साथ १८ जून १५७६ ई० के दिन खमनोर ग्राम के पास बनास नदी के तट पर घमासान युद्ध हुआ । यह युद्ध हल्दीघाटी के मुहाने पर हुआ था, इस घाटी में से निकलकर महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल सेना पर आक्रमण किया था, युद्ध के बाद मेवाड़ की शेष सेना इस घाटी में होकर वापिस लौट गई थी, इसी कारण यह इतिहास प्रसिद्ध युद्ध 'हल्दीघाटी का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इस युद्ध में महाराणा प्रताप के समस्त वीर योद्धा और प्रमुख सरदार सम्मिलित हुए थे । राणा ने युद्ध से पूर्व अपनी सेना को पारम्परिक रीति से विभाजित और संगठित किया था जिसमें हरावल चन्दावल, दक्षिण बाजू, वामबाजू और मध्य-ये पांच विभाग रख गये थे । दाहिने बाजू का नेतृत्व राजा रामशाह तंवर के साथ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द को सौंपा गया था । इनके

१ ताराचन्द स्मारक ग्रंथ सादड़ी की विज्ञप्ति में लिखा है कि 'भामाशाह का जन्म वि सं १६०० में और ताराचन्द का जन्म वि स १६०४ आषाढ़ शुक्ल दशम को चित्तौड़गढ़ में हुआ था' परन्तु इसका कोई आधार ज्ञात नहीं होता । 'वीरविनोद' में भामाशाह के जन्म की तिथि वि स १६०४ आषाढ़ शुक्ला १० लिखी है । अतः ताराचन्द का जन्म इसके बाद ही होना चाहिये ।

साथ पांच सौ सैनिक थे। [1] प्रताप की दृष्टि मे ये दोनो वैश्यबन्धु पर्याप्त उच्च स्थान प्राप्त कर चुके थे अत इन्हे सेना के एक पक्ष का नेतृत्व सौपा गया था, इन वीरो को सम्मान देते हुए इन्हे हरावल के दक्षिण बाजू म रखा गया था।

युद्ध के प्रारम्भिक काल मे ही महाराणा की सेना के दाहिने बाजू ने मुगल -सेना के बायें बाजू पर जोरदार हमला किया और उसे छिन्न भिन्न कर दिया। यह आक्रमण इतना प्रबल था कि मुगल सेना पीछे मुडकर १० १२ मील तक भागती रही। इसी समय मिहतरखा ने आकर बादशाह अकबर के आने की अफवाह फैला दी, जिससे हताश मुगल सेना म पुन शक्ति-सचार हुआ। अ यथा इस समय मुगल सेना की हार निश्चित थी। मुगल सना के बायें बाजू का नेतृत्व कर रहे सीकरी के शेखजादे और लूणकरण ने सैन्यदल के साथ अपने स्थान से भागकर हरावल म से होते हुए अपनी सेना के दाहिने बाजू मे जाकर शरण ली थी।

तब, मुगल सेना के बायें बाजू के नायकों के भाग जाने पर राजा रामशाह तवर और भामाशाह ताराचन्द भी अपने स्थान से हट गये और वे प्रताप के पास मध्य मे आ गये। [2] रामशाह तवर के मारे जाने पर प्रताप पर मुगल सेना का दबाव बहुत बढ गया और वह चारो ओर से शत्रु दल स घिर गया। इसी बीच वह घायल हो गया। उसके घोडे की टाग कट चुकी थी। ऐसी दशा मे भी प्रताप युद्ध से हटना नहीं चाह रहा था। उसके प्राण सकट मे देखकर बीदा झाला ने उसका 'राज छत्र' छीन लिया तथा उसको ही प्रताप समझकर मुगल सनिक उस पर टूट पडे। इसी समय "उसके (महाराणा प्रताप के) विश्वस्त अनुयायी ने लगाम पकडकर उसके घोडे का मुह घुमा दिया और वे अपने घायल सरदार को अपनी सेना के पीछे भाग से घाटी के उस पार सुरक्षापूवक ले गये। [3] चूकि इस समय भामाशाह और ताराच द ही प्रताप के इद गिद थे अत वे ही उसके विश्वस्त अनुयायी थ जो महाराणा प्रताप को युद्ध के क्षेत्र से बाहर सुरक्षित पहुचाने म सफल हुए।

इस प्रकार ताराचन्द ने अपने भाई के साथ हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में वीरतापूवक लडकर पुन अपने स्वामी की रक्षा का दायित्व निभाया।

---

१ जदुनाथ सरकार, भारत का सैन्य इतिहास, (हिन्दी अनु) पृ ८९

२ जदुनाथ सरकार वही पृ ८८-८९

३ जदुनाथ सरकार, वही पृ ९२

इसके लिए भामाशाह जैसे विश्वसनीय व्यक्ति को 'प्रधान' बनाया उसी समय (सन १५७६ म) ताराचन्द को भी गोडवाड का हाकिम नियुक्त किया गया था। मारवाड की ओर से मुगलो के मेवाड पर आक्रमण रोकने के लिए नाकाबन्दी करने की दृष्टि से गोडवाड की सुरक्षा का जिम्मा ताराचन्द जैसे वीर और कुशल व्यक्ति को सौंपना युक्तियुक्त था।

शाहबाजखा गोडवाड म ही दो वर्ष तक संघर्ष करता रहा, परन्तु कुभलगढ पर विजय प्राप्त नही कर सका। उस समय ताराचन्द ने ही उसका तीव्र प्रतिरोध किया। अन्त मे वि स १६३५ (१५७८ ई) में शाहबाजखा कुभलगढ पर पूर्ण अधिकार करने मे सफल हो सका वह भी धोखे और मक्कारी से। गोडवाड पर फिर भी वह पूर्ण आधिपत्य नही जमा सका, क्योंकि इसके बाद भी ताराचन्द ही गोडवाड का गवर्नर बना रहा स १६४२ में सादडी मे उसके आदेश से जैन कवि हेमरतन ने 'गोरा बादल पद्मिनी चौपाई' की रचना की थी।

मालवे की लूट

जून १५७८ ई॰ में कुभलगढ पर मुगल बादशाह अकबर के सेनानायक शाहबाजखां का अधिकार हो गया। उससे पूर्व ही महाराणा प्रतापसिंह पर्वतीय मार्गों से होकर राणपुर पहुचे और वहा से ईडर राज्य के चूलिया नामक ग्राम में चल गये। महाराणा की आज्ञा से उसका प्रधान भामाशाह कुभलगढ की प्रजा को लेकर मालवे म रामपुरा की ओर गया। ताराचन्द भी उसके साथ था। वहा के राव दुर्गा ने उनकी बडी आवभगत की और सुरक्षा प्रदान की।[1]

इसी वर्ष भामाशाह और ताराचन्द ने अकबर के सूबे मालवे को लूटा तथा वहा से दण्डस्वरूप २५ लाख रुपये और बीस हजार अशर्फियां वसूल की। यह सारा धन इन दोनों ने ले जाकर चूलिया में महाराणा प्रताप को भेंट किया।[2] इस धन से महाराणा प्रताप को पुन सैन्य सगठित करने मे अत्यन्त सहायता मिली। इस सहयोग के लिए महाराणा ने इन दोनो भाईयो की बडी खातिर की।

कुछ समय बाद महाराणा प्रताप ने दिवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया। इस अवसर पर भामाशाह अपने साथियो के साथ सम्मिलित हुआ। ताराचन्द भी उसके साथ था। दोनो भाईयो ने बडी वीरता दिखाई। मुगल

---

१ वीरविनोद, भाग २, पृ १५७

२ वही पृ १५७

थानेदार सुल्तानखाँ मारा गया। थाने के अन्य लोग भाग गये। दिवेर की घाटी पर अधिकार करके गोडवाड की ओर जाने वाले रास्ते को महाराणा ने पूर्ण सुरक्षित बना लिया।

मालवे पर दूसरा अभियान

महाराणा प्रताप की आज्ञा से १५८० ई० के लगभग ताराचन्द मालवे में मदसौर की ओर गया। वह दुबारा मालवे को लूटना चाहता था, मुस्लिम सेनापति शाहबाजखा को इसकी सूचना मिलने पर उसने ताराचन्द का पीछा किया। शाहबाजखा तीतरोद परगने से होते हुए चम्बल के किनारे ताराचद को घेर लिया। ताराचन्द वहा से युद्ध करता हुआ बसी के पास तक पहुंच गया, वहा वह घायल होने के कारण बेहोश होकर घोडे से गिर पडा। परन्तु रणीजा (बसी) का राव साइन्दास देवडा उसे घायल और बेहोश अवस्था में वहा से उठाकर अपने किले मे ले गया[1] जहा उसका उपचार कराया गया और वह स्वस्थ हो गया।

शाहबाजखा तो दूसरी ओर चला गया उसे बिना ताराचद को पकडे लौट जाना पडा। जब ताराचन्द के घायल होने का समाचार महाराणा प्रताप ने सुना तो वह सेना सहित चावड चला। उसने मालवे म दशोर आदि शाही थानों को नष्ट किया और वहा से दण्ड वसूल किया। फिर बसी आकर साइदास के प्रति प्रताप ने बडी कृतज्ञता प्रकट की और ताराचन्द को अपने साथ लेकर पुन चावड लौट आया। इससे प्रकट होता है कि राणा प्रताप को ताराचन्द के प्रति गहरा विश्वास, आत्मीयता और प्रेम था।

धर्म–प्रचार

ताराचन्द जैनमत के अन्तर्गत लुकागच्छ का अनुयायी था। उसने लुकागच्छ के प्रसार-प्रचार के लिए अपने जीवन म अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। लुकागच्छ की संस्कृत में लिखी 'पट्टावली' से ज्ञात होता है कि ताराचद ने सादडी के अतिरिक्त अनेक स्थान पुर और ग्रामों में पोषधशालाएँ आदि बनवाये। उसने अनेक लोगों को प्रचुर धन और प्रलोभन देकर अपने गण (गच्छ) मे शामिल कर लिया था।[2]

---

१ वीरविनोद भाग २ पृ १५८

२ "ताराचन्द्रेण सान्डी नामकनगरं स्थापितं सर्वत्र पोषधशालादिकानि स्थानानि कारितानि स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनेभ्यो धन दायं दायं स्वगणीया कृता।" (नागपुरीय लुकागच्छ पट्टावली)।

कहते हैं ताराचद ने लु कागच्छ के प्रचार व लिए बाइ कसर नही छोडी। श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला फलोदी से स १९८५ म "श्री जन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड श्रौर सान्डी लु कामतियो के मतभेद का दिग्दशन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक मे यह भी लिखा है–

'जिस बावडी पर ताराचन्द की बठक थी उसी बावडी पर ताराचन्द, उनकी ग्रौरता, दासिया ग्रौर घोडी की मूर्तिया बनाकर वि स १६४८ वैशाख कृष्णा ९ को प्रतिष्ठा करायी गयी थी। ग्राज भी लु कामत वाले उन मूर्तिया की केशर चन्दन स पूजन व ग्र गी रचना करते हैं सदैव व I जाकर दशन करत हैं। लोको के साधु साध्विया भी वहा दशन करने को जाते हैं। लु का म कोई दीक्षा हो तो पहले ताराचन्द के यहा आत हैं। तपश्चर्या हो गाजा वाजा के साथ बहुत लोग वहा जाया करते हैं। इतना ही नही, ताराचन्द की मूर्ति को लु का एक तीथ समझते हैं।' [1]

इस प्रकार ताराचद ने लु कागच्छ के प्रचार मे बडा योगदान दिया। उसके इन कार्यों से वह लु कागच्छ म बहुत प्रतिष्ठित माना जाने लगा। सादडी में उसका निवास स्थान इस गच्छ के ग्रनुयायियो के लिए एक तीथ बन गया, यह मान्यता वहा ग्रब तक प्रचलित है।

कला श्रौर साहित्य के प्रति ग्रभिरुचि

ताराचद की स्थापत्य, सगीत ग्रौर साहित्य की ग्रोर गहरी ग्रभिरुचि थी। उसने ग्रनेक स्थानो पर लु कागच्छ की पोषधशालाग्रो का निर्माण कराया। गोड-वाड का हाकिम बनन पर उसने सादडी म ग्रपने रहने के भवन बनवाये जिसे 'रावला' कहा जाता है। सादडी नगर की सुरक्षा के लिए परकोट का निर्माण कराया। इसानगर में उसने एक विशाल 'जन उपाश्रय' का भी निर्माण करवाया था जिसका ग्रब श्वेत सगमरमर के पाषाणो से जिर्णोद्धार किया जा चुका है ग्रौर जिसे ग्रब 'महावीर भवन' कहते हैं। इस उपाश्रय में ताराचद की सगमरमर की बनी एक छत्री-विद्यमान है। सबसे महत्वपूर्ण उसके द्वारा ग्रपने नाम पर बनवायी हुई 'ताराबावडी' नामक कलात्मक विशाल बावडी ग्रौर बारादरी है। तीथस्व-रूप यह बावडी ताराचद का ग्रमर स्मारक बन गया है।[2]

---

१ वीरशासन, १६ दिसबर १९५२, पृ ७ पर उद्धृत।

२ श्रेयाय श्रीताराबाविनामक तीथ कारित (सादडी के ताराबावडी का लेख स १६५४, पक्ति १५)

ताराबावडी–

राजस्थान में विशाल बावड़ियों के बनाने की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। इनमें कई खण्ड होते थे। बावड़ियां कई मंजिलों में बनायी जाती थीं। इन मंजिलों पर बैठने के स्थान भी होते। इन्हीं स्थानों पर निर्माता या समाज के प्रतिष्ठित लोग बैठ कर वातानुकूलन का आनन्द लेते थे। ग्रीष्मकाल में ये बावड़ियां सुखद जलवायु का स्थान होती थीं। ताराचंद के द्वारा निर्मित बावड़ी में भी उसके बैठने का स्थान दर्शाया है।

ताराचंद ने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई थी। यद्यपि इस बावड़ी का निर्माण कार्य बहुत कुछ ताराचंद के काल में ही हो चुका था परन्तु इसको उसके पुत्र सुरताण ने पूरा करवाया था। इसकी प्रतिष्ठा सं १६५४ (शक संवत् १५२०) वैशाख कृष्ण २ गुरुवार के दिन हुई थी। इस अवसर पर एक शिलालेख बावड़ी के दायीं ओर दीवार में लगाया गया था। इस लेख से ज्ञात होता है कि ताराचंद और उसके साथ सती होने वाली ग्यारह स्त्रियों के पुण्य हेतु बावड़ी-रूप इस तीर्थ की ताराचंद के पुत्र सुरताण द्वारा प्रतिष्ठा करायी गई थी। कुछ समय पूर्व बावड़ी का जीर्णोद्धार कराते समय इस लेख को वहां से हटा दिया गया है। इस लेख की छाप के आधार पर रामवल्लभ सोमानी ने इसे प्रकाशित कराया था।[1]

यह बावड़ी पांच मंजिल में निर्मित है। इसमें दो ओर से नीचे उतरने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं जो नीचे जाकर एक हो जाती हैं। दोनों ओर की सीढ़ियों के बीच में दो मंजिलों में दो 'महामंडप' बने हुए हैं। यह बावड़ी स्थापत्य का उत्कृष्ट नमूना है। बावड़ी के ऊपर ताराचंद की छत्री बनी हुई है। बावड़ी पर विशाल रहट लगा हुआ है जिसके द्वारा समीपवर्ती बाड़ी में जल-सिंचन किया जाता था। अब इस रहट वाले स्थान को टिन की शीटों के भवन से ढक दिया गया है। पानी की नालियां अब तक मौजूद हैं। बावड़ी के निर्माण में स्थानीय मटमैले लाल पत्थर का ही उपयोग हुआ है। यद्यपि पहले यह बावड़ी सादड़ी नगर से बाहर थी परन्तु अब नगर के अन्दर आ गयी है।

ताराचंद संगीत का अच्छा पारखी था। मुगलों की शैली पर उसका दरबार ठाट बाट से लगा करता था जिसमें संगीत और नृत्य गीत आदि

---

१ मरुभारती, वर्ष १५, अंक ३ पृ ६८

के आयोजन भी हुआ करते थे। उसके आश्रय में कई संगीतज्ञ गायक और नर्तक और नर्तकिया रहते थे। उसके आकर्षण और व्यक्तित्व प्रभाव के कारण ही उसकी मृत्यु के बाद उसकी चिता म बैठकर गायिकाओं, एक गायक और उस की स्त्री ने अपने प्राणोत्सर्ग किये थ। यह उस कला प्रेमी और कला के उदार-मना आश्रयदाता के लिए विश्व म सबसे बडी श्रद्धांजलि थी, जिसे उन कलानु नुरागियो ने अपने प्राणो की आहुतिया देकर पूर्ण की थी।

ताराचन्द साहित्य प्रेमी था। मेवाड मुगल सघर्ष के उस भीषणकाल म भी साहित्य और कलाओ को प्रोत्साहन देना एक महत्वपूर्ण काम थी। अनेक कवि, साहित्यकार उदार हृदय से उसके यहा आते, ठहरते आश्रय पाते अपनी रचनाए करते, उसे सुनाते और योग्यतानुसार पुरस्कार प्राप्त करते थे। उसके काल म सादडी मे हेमरतन नामक एक जैन मुनि का निवास रहा, वह उच्चकोटि का कवि भी था। वह श्वेताम्बर पूर्णिमिया गच्छ का याचक था। उसका सपर्क तारा चद के साथ होना स्वाभाविक था। ताराचद की मेवाड के राजवश के प्रति अटूट आस्था थी। उस काल म चित्तोड की पद्मिनी की कथा राजस्थान और उसके सीमावर्ती प्रदेशो मालवा और गुजरात मे सर्वत्र विख्यात थी। न केवल यही अपितु सुदूर पूर्व मे भी उसकी कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। रानी पद्मिनी के त्याग और बलिदान की गाथा को आधार बनाकर ही मलिक मोहम्मद जायसी ने दोहा चौपाई छदों मे 'पदमावत' की रचना की थी। ताराचन्द ने हेमरतन सूरि की कवित्वशक्ति स प्रभावित होकर उससे पद्मिनी सबधी गौरवपूर्ण कथानक को राजस्थानी काव्य वाणी मे निबद्ध करने का अनुरोध किया। तदनुसार कवि हेम-रतनसूरि ने श्रावण शुक्ल ५ वि स १६४५ को सादडी म इस सुन्दर रचना को पूर्ण किया और इस कृति का नाम रखा गया 'गोरा-बादल पद्मिनी चौपाई'।[1] इसमे गोरा बादल की स्वामीभक्ति और उसके द्वारा चित्तोड के गौरव की रक्षा हेतु अपने बलिदान का वर्णन ओजपूर्ण शब्दों मे किया गया है। इसकी रचना सादडी नगर मे की गई उस समय मेवाड के महाराणा प्रताप का गोडवाड पर आधिपत्य था। उसके शौर्य और वीरता त्याग के काम दिन प्रतिदिन बढते जा रहे थे।

इस प्रकार ताराचद को सगीत स्थापत्य और साहित्य से अत्यत अनुराग

---

१ इस ग्रथ की मूल हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा के देराश्री सग्रह म विद्यमान है, जिसके आधार पर इसका रा प्रा वि प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशन किया जा चुका है।

था। वह इन ललित कलाओं की विशिष्ट सूक्ष्मतम जानकारी भी रखता था तथा कलाकारों और साहित्यकारों को प्रोत्साहन व आश्रय प्रदान किया करता था।

मृत्यु

ताराचन्द की मृत्यु वैशाख कृष्णा ९, वि स १६४८ (१५९१ ई) में हुई थी। महाराणा प्रताप की मृत्यु इसके छ वर्ष बाद वि स १६५३ (१५९७ ई) में एवं भामाशाह की मृत्यु वि स १६५६ (१६०० ई) हुई थी। इस प्रकार बहुत कम आयु में ही ताराचन्द की मृत्यु होना ज्ञात होता है।

सादडी में ताराचन्द की छत्री के पास उसकी चार स्त्रियों की मूर्तियां हैं। इसके अतिरिक्त एक खवास, ६ गायिकाएं एक गवया और एक गवया की स्त्री की मूर्तियां भी खुदी हुई हैं। इन पर वि स १६४८ वैशाख वदि ९ के लेख हैं।[1]

मुंशी देवीप्रसाद ने भी आर्कियोलोजिकल सर्वे के एक दौरे के अवसर पर सादडी के बाहर इस सतीवाड को देखा था जिसका उन्होंने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है।

'श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड और सादडी लुंकामतियों के मत भेद का निदर्शन'[2] नामक पुस्तक में भी लिखा है जिस बावडी पर ताराचन्द की बैठक थी उसी बावडी पर ताराचन्द उनकी औरतें दासियों और धोबी की मूर्तियां बनाकर वि स १६४८ वैशाख कृष्णा ९ को प्रतिष्ठा करवायी गयी थी।

इससे ज्ञात होता है कि पुराने सादडी नगर के बाहर ताराचंद के द्वारा बनवायी हुई बावडी के ऊपर ही उसकी दाहक्रिया की गयी थी, वहीं उसके स्मारक स्वरूप 'छत्री' और सतियों के मूर्ति उत्कीर्ण शिला-पट्ट लगवाये गये थे। ये शिलापट्ट अब छत्री का जीर्णोद्धार करते समय वहां से हटा दिये गये हैं, अत उन पर अंकित स १६४८ के लेखों का भी पता नहीं चलता। उनके स्थान पर संवत २०१३ चैत्र सुदि १० शुक्रवार को ताराचन्द की छत्री के अन्दर संगमरमर

१ सरस्वती, भाग १८, सं २, पृ ९७ रामवल्लभ सोमानी, ऐतिहासिक शोध-संग्रह, पृ ६९

२ यह ग्रंथ 'श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला' के अन्तर्गत फलोदी (मारवाड) से सन् १९८५ में प्रकाशित हुआ था।

की एक बड़ी शिला, जिस पर मूर्तियाँ और लेख अंकित हैं स्थापित की गई है। इस शिला पर दो कतारा मे मूर्तियो की खुदाई हुई है। ऊपर की पंक्ति म तारा चन्द की अश्वारूढ मूर्ति के सामने हाथ जोडे हुए पाच पत्नियों की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। इसके नीचे तीन पंक्तियो म लेख खुदा है। उसके नीचे मूर्तियों की दूसरी कतार मे विभिन्न भंगिमाओ म नृत्य करती हुई छ गणिकाओं (पतिकाओं)की मूर्तिया खुदी हुई हैं। इसके नीचे लेख क शेष भाग की चार पंक्तिया अंकित हैं। इस लेख स ज्ञात होता है कि भारमल और उसके पुत्र ताराचन्द को ठाकुर कहा जाता था। भारमल की पत्नी का नाम इसी बावड़ी के प्रतिष्ठा लेख म 'कपूरदेवी' लिखा है। ताराचन्द के स्वर्गारोहण पर उसकी ५ पत्नियां यहा सती हुई थीं, जिनके नाम तारादे त्रिजवणदे, अमूरदे सामागदे और वीरागदे दिये गये हैं। जो खवासन सती हुई थी उसका नाम केतकी दिया है। इनके साथ छ गणिकाएं (नतकियां) भी चिता पर आरूढ हुई थीं इनके नाम थ- कामरेखा, गुणसुन्दरा, वसंतमाला फूलमाला बोबीला और माहनी। इस लेख मे उल्लेख है कि ताराचन्द की मृत्यु वि स १६४८ वैशाख कृष्ण ८(९) मंगलवार को हुई थी तथा इस छत्री का निर्माण स १६४९ कार्तिक सुदि ५ सोमवार को पूर्ण हुआ था तथा छत्री का जीर्णोद्धार और नवीन मूर्ति की स्थापना संवत् २०१३ चैत्र सुदि १०, गुरुवार को हुई थी।[1] गायक और उसकी स्त्री की मूर्तियां इसमें नहीं हैं। ताराचन्द की छत्री को आजकल ताराचन्द का मंदिर भी कहते हैं।[2]

ताराबावडी के शिलालेख (स १६५४) से भी ज्ञात होता है कि ताराचन्द के साथ ग्यारह स्त्रियां सती हुई थी।[3]

उसकी मृत्यु के सबंध में बताया जाता है कि-' ताराचन्द गोडवाड का हाकिम था, वह बडे अमीराना ठाठ से सादडी मे रहता था। उसने कीटू नाम की एक खवासन घर म रख छोडी थी। वह बहुत सुन्दर थी। महाराणा प्रतापसिंह के

१ यह लेख- देखें परिशिष्ट। इसका पृथक् से फोटोग्राफ भी मुद्रित है।

२ इस मंदिर के सम्बन्ध म विशेष धार्मिक मान्यता प्रचलित है। कावेडिया परिवारों का यह एक ही मंदिर है। यहा पर इनके बच्चो के मुंडन कराने (झडूला उतारन) का रिवाज है। विवाह के बाद यहा पर जात दी जाती है। कई को यहा का अज्ञात पडता है जैसे स्वप्न आदि मे दर्शन देना मिन्नत पूरी होना आदि। कहते हैं ताराचन्द की दिव्यात्मा सादडी नगर मे घूमती रहती है इसी से कभी यहा डकती (धाडायत) नहीं पडी।

३ ताराचंदस्य एकादश सतीसहितसपुण्याय (ताराबावडी का लेख, स १६५४, पंक्ति १४)

बड़े अमरसिंह ने उसकी इस सुन्दरता का वर्णन सुनकर उसे मांगा, तो ताराचंद ने उसे न दिया। इस पर महाराणा ने उसे उदयपुर बुलवा कर मरवा डाला। नथूराम सेवक उसका गवैया था। वह उसकी पगड़ी लेकर सादड़ी में आया। पगड़ी के साथ उसकी चारों औरतें, खवासन कीतू, ६ गायिकाएं, नथूराम और उसकी औरत, ताराचंद की एक फूफी, उसका पति और एक मुसलमान औलिया कुल २० आदमी चिता बनाकर जल मरे। २१ वीं एक घोड़ी भी थी।'[1]

परन्तु यह विचार इतिहास-विरुद्ध है। ताराचन्द की मृत्यु के समय महाराणा प्रताप का शासनकाल था अतः महाराणा अमरसिंह द्वारा कीतू नामक खवासन को चाहने और उसे न देने पर उदयपुर बुलवाकर ताराचंद को मरवा डालने का कथानक कपोलकल्पित ज्ञात होता है।

सादड़ी के ताराबावड़ी के सं १६५४ के प्रतिष्ठा-शिलालेख को, जिसे ताराचन्द के पुत्र सुरताण ने खुदवाया था से भी ज्ञात होता है कि उस समय तक ताराचन्द की मृत्यु हो चुकी थी। यह शिलालेख महाराणा अमरसिंह की गद्दीनशीनी के केवल तीन माह बाद का है। अतः महाराणा अमरसिंह के गद्दी पर बैठने से पूर्व ही ताराचन्द की मृत्यु होना प्रमाणित होता है।

ताराचन्द की मृत्यु के समय भामाशाह मेवाड़ राज्य के 'प्रधान' के पद पर आसीन था और महाराणा अमरसिंह के प्रारम्भिक काल तक इसी पद पर बना रहा। वह अपने भाई के अपमान और मार डाले जाने को कैसे सहन कर सकता था?

ताराचन्द की मृत्यु के बाद भी कुछ पीढ़ियों तक उसके वंशज 'ठाकुर-साहब' ही कहलाते रहे अतः प्रतीत होता है कि उसके वंशजों के पास कुछ काल पर्यन्त गोड़वाड़ की हाकिमी यथावत् चलती रही।

ताराचन्द वीर साहसी योद्धा, कुशल प्रशासक और उत्तम प्रबंधक था। उसने अनेक सैनिक अभियानों का संचालन किया, गोडवाड़ की सुरक्षा और शासन प्रबन्ध करते हुए मेवाड़ की रक्षा में अपूर्व सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त उसने कला व साहित्य को संरक्षण देकर उनकी उन्नति में योगदान दिया। मेवाड़ के इतिहास में उसका स्थान महत्वपूर्ण और चिरस्थायी रहेगा इसमें कोई संदेह नहीं।

---

१ मुंशीजी द्वारा दिया गया यह विवरण वीरशासन के १६ दिसम्बर १९५२ के अंक में पृ ७ पर उद्धृत हुआ है।

५. भामाशाह के वंशज

जीवाशाह

'प्रधान' पद पाना

भामाशाह का पुत्र 'जीवाशाह' हुआ। उसका जन्म का नाम 'जीवराज' मिलता है। महाराणा अमरसिंह के शासनकाल में प्रारंभिक ढाई तीन वर्षों तक भामाशाह ही 'प्रधान' रहा। भामाशाह की मृत्यु माघ शुक्ल ११ सं १६५६ (जनवरी १६०० ई) को हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने 'प्रधान' का पद प्रदान किया।[1] वह भी विश्वसनीय और योग्य व्यक्ति था।

सैन्य-संचालन में सहयोग

डा ओझा ने लिखा है- "वह अपने पिता की लिखी हुई बही के अनुसार जगह-जगह से खजाना निकाल कर लड़ाई का खर्च चलाता रहा।"[2]

बादशाह जहांगीर से भेंट

महाराणा अमरसिंह के समय फरवरी १६१५ ई में मुगलों के साथ संधि हो गयी। यह संधि पूर्ण सम्मानजनक शर्तों के आधार पर की गई और मेवाड़ के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखा। इस संधि के सम्पन्न होने के बाद शाहजादा खुर्रम के साथ कुंवर कर्णसिंह अजमेर में मुगल बादशाह जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय खुर्रम की सिफारिश से बादशाह ने कर्णसिंह को दाहिनी ओर की पंक्ति में सबसे प्रथम खड़ा रहने की आज्ञा दी। फिर उसको खिलअत और एक जड़ाऊ तलवार प्रदान की। इस अवसर पर कुंवर कर्णसिंह के साथ प्रधान जीवाशाह भी अजमेर गया था।[3]

जीवाशाह की मृत्यु महाराणा कर्णसिंह के शासनकाल में हुई वह मृत्युपर्यन्त 'प्रधान' बना रहा। महाराणा कर्णसिंह ने भी उसे अच्छा सम्मान दिया।

---

१ वीरविनोद, भाग २ पृ २५१
२ डा ओझा राजपूताने का इतिहास जिल्द २ पृ १३०३
३ वीरविनोद भाग २ पृ २४१, ओझा- 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २, पृ १३०४

परिवार

मेवाड़ की ख्यातों, बहियों और गीतों में इसका नाम 'अखैराज' दिया है। यह भामाशाह का पौत्र और जीवराज (या जीवाशाह) का पुत्र था। अखैराज की माता 'सोहोनी' (सम्भवतया 'मोहोनी' या मोहनी) थी जो कर्मचन्द की पुत्री थी। यह वही कर्मचन्द था जो 'कर्माशाह' (कर्मसिंह) के नाम से प्रसिद्ध रहा और वह राणा रत्नसिंह (द्वितीय) के काल में मंत्री के पद पर रहा।[1] इस प्रकार अखैराज ने मातृ और पितृ पक्ष की ओर से कुलीनता प्राप्त की थी और वह उनसे 'सवाया' निकला।[2]

राज्य-सम्मान

महाराणा अमरसिंह ने अक्षयराज को देख एवं प्रसन्न होकर उसे और उसके कुटुम्बियों को रेशमी और जरीन वस्त्र उपहार में दिये।[3]

---

1 शत्रुंजय तीर्थ (सौराष्ट्र में पालीताणा के पास) से मिले एक शिलालेख में कर्माशाह द्वारा शत्रुंजय का पुनरुद्धार कर नवीन प्रतिष्ठा कराये जाने का विवरण प्राप्त होता है। इस लेख में इसके वंशज का वर्णन भी दिया है। (एपिग्राफिया इण्डिका भाग २, पृ ४७ ४८)

२ अखयराज का वंश-परिचय एक प्राचीन गीत में इस प्रकार मिलता है-

'अखो दुवे पख ऊजलो, सिरदार सवायो।
सुत हुवो जीवा तणे, जग सोभी आयो॥
राणी जा मोहोनी धरा, जिण कूख रहायो।
दादा जिणरो भामसाह, जिण दान बोहायो॥
नानो जिणरो करमचन्द कलि कल्प कहायो।
जिण पैंतीसो पाखियो, धाने जग धायो॥
थारे बहता बारणे नीसाण बजायो।
सो अक्खो उजवालणो, भागीरथ आयो॥'

('प्राचीन राजस्थानी गीत', भाग 11, पृ ४८)

३ म्हारो राणा अमरसिंह, दीनो मुजरो पायो।
पाट पटंबर अम्बरा, परिगह पहरायो॥ (वही पृ ४९)

प्रधान का पद

महाराणा अमरसिंह की मृत्यु (२६ जनवरी १६२० ई०) के बाद उसका पुत्र करणसिंह उदयपुर की गद्दी पर बैठा। मार्च १६२८ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसने ८ वर्ष और ८ दिन राज्य किया। महाराणा करणसिंह ने अखैराज को अपना 'प्रधान'(मन्त्री) बनाया। उसे सभी सामन्त चाहते थे। इस अवसर पर जब वह अपने घर आया तब उसकी पत्नी ने मणि-मुक्ताओं के थाल भर कर उसको बधाया (स्वागत किया)।[1] तब से वह महाराणा जगतसिंह के काल तक इस पद पर बना रहा।

डूंगरपुर पर आक्रमण

अखैराज के कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण उसका डूंगरपुर पर आक्रमण और उसकी विजय कर पुनः उदयपुर लौटना है। उसके इस अभियान का संक्षिप्त विवरण जगन्नाथराय प्रशस्ति, राजप्रशस्ति एवं अमरकाव्य में मिलता है। परन्तु इसका विस्तृत विवरण 'विदुर' नामक चारण कवि द्वारा विरचित समकालीन एक गीत में दिया गया है।

डूंगरपुर का राजवंश मेवाड़ के राजवंश से सम्बन्धित था। अतः जब १५७६ ई० में डूंगरपुर के रावल आसकरण ने मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तो इस समाचार को सुनकर महाराणा प्रतापसिंह को क्रोध आया और डूंगरपुर पर आधिपत्य करने के लिए १५७८ ई० के लगभग उसने रावत भाण सारंगदेवोत (कानोड़ वालों का पूर्वज) को सैन्य सहित भेजा। सोम नदी के किनारे दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। इसमें रावत भाण स्वयं बहुत घायल हो गया और उसका काका रणसिंह मारा गया। इसमें वागड़िये चौहानों ने बहुत वीरता दिखाई, परन्तु वे हारकर भाग गये। डूंगरपुर के शासक ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

महाराणा अमरसिंह और मुगल बादशाह जहांगीर के मध्य ५ फरवरी १६१५ ई० को संधि हो गयी। इस संधि के बाद 11 मई १६१५ के एक फरमान द्वारा बादशाह ने मेवाड़ के सारे प्रदेश, चित्तौड़ का किला तथा मेवाड़ के अधीन पूर्व के सारे इलाके तथा फूलिया रतलाम बांसवाड़ा, डूंगरपुर, जीरन,

१ दे परधानो करणसिंघ, मुजमार भलायो।
भूप अनूपा ठाकरां सगलां मन भायो॥
चिणता मिणता मोतिया, भरि थाल बधायो।
साह घरे आयो सभा, दणियर, दरसायो॥ (वही, पृ ४६)

नीमच, अरनोद आदि बाहर के परगने भी कुंवर कर्णसिंह को जागीर मे दे दिये।[1]

महाराणा जगत्सिंह ने राजगद्दी प्राप्त करते ही उसी वर्ष डूंगरपुर पर अधिकार करने के लिए अपने मंत्री अक्षयराज को सेना सहित भेजा। इसके कारण की मीमांसा करते हुए डा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा का मत है- "महाराणा प्रतापसिंह के समय से ही डूंगरपुर बादशाही अधीनता मे चला गया था, जिससे वहां के रावल उदयपुर की अधीनता नहीं मानते थे। इसलिए महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज को सेना देकर रावल पुंजा पर, जो उस समय डूंगरपुर का स्वामी था भेजा।"[2]

महाराणा कर्णसिंह का राज्यकाल प्राय अपने उजड़े हुए राज्य को आबाद करने में ही व्यतीत हुआ। इसलिए उसने डूंगरपुर आदि से कोई छेड़-छाड़ नही की परन्तु उसके पुत्र महाराणा जगत्सिंह ने शाही फरमान के अनुसार डूंगरपुर बांसवाड़ा और देवलिया को अपने अधीन करने की चेष्टा की, किन्तु उक्त राज्यो ने मेवाड़ के अधीन रहना नापसन्द किया। इस अवसर पर महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज कावडिया को सेना सहित डूंगरपुर पर भेजा।[3]

इस राजनैतिक कारण के अतिरिक्त तात्कालिक कारण भी थे, जिनसे क्रुद्ध होकर महाराणा ने रावल पूंजा के विरुद्ध सेना भेजी। इसका संकेत 'विदुर' कृत एक प्राचीन गीत मे इस प्रकार मिलता है। जब महाराणा कर्णसिंह का देहान्त हुआ और उसका पुत्र जगत्सिंह राजगद्दी पर बैठा तब रिवाज के अनुसार मेवाड़ के सभी सामन्त एवं अधीन राजा राजतिलक के अवसर पर राजदरबार मे उपस्थित हुए और नजराना पेश किया। इस अवसर पर स्वयं डूंगरपुर के रावल पूंजा ने महाराणा के विरुद्ध ऐसे आचरण किये जिससे महाराणा का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। इस संबंध म विदुर ने अपने राजस्थानी गीत म निम्न पांच बातों का उल्लेख किया है-

१ रावल पूंजा सभी सामंतो के आने के बाद उदयपुर आया।

२ महाराणा जगत्सिंह के राजतिलक के समय भेंट करने के लिए मणि माणक हीरे, रत्नादि कुछ भी साथ नहीं लाया।

३ उसने उदयपुर नगर के पास पहुंच कर नक्कारे बजवाए। (नक्कारे का बज-

---

१ यह फरमान 'वीरविनोद' भाग २ पृ २३९ से २४९ पर छपा है।

२ डॉ ओझा 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २ पृ ८३३

३. डॉ ओझा, 'डूंगरपुर राज्य का इतिहास' पृ १०८

वाना उसकी स्वतंत्र शासक के रूप म सत्ता को प्रकट करने के लिए था) ।

४ राणा की सभा म रावल पूजा बिना बाने हो अभिमानपूर्वक सामने आकर बैठ गया।

५ रावल पूजा राणा की सभा म से शीघ्र उठकर रवाना हो गया।[1]

राणा ने उसके इस प्रकार के व्यवहार को उद्दण्डतापूर्ण माना और क्रोधित होकर उससे 'दण्ड' की माग की। वह राजद्वार तक भी नही पहुचा था कि उससे कहा गया कि वह दण्ड दिये बिना अपने स्थान डूगरपुर नही जा सकता। इस पर पूजा ने क्रुद्ध होकर पुन कहलाया- मेरा प्रात अलग है। रावल और राणा वश दोनो का एक ही घर है। फिर भी हमारा वश बडा माना जाता है। यदि हमसे कोई बुरा काय हुआ हो तो उस पर विचार पूवक जाच करें। अपने ही घर म मनमानी करना व्यथ है। दड लेना हो तो साम नदी पार कर मेरे देश में आवें तब पता चल जावेगा। यह कहलाकर पूजा न विदा के साथ नक्कारे बजवाये और रवाना हो गया।

इस आचरण से स्पष्ट हो गया कि डूगरपुर का शासक मुगलो से स्वतंत्र मनसब प्राप्त करके अपने को मेवाड की प्रभसत्ता स पृथक मान बैठा था।

महाराणा ने अपनी सेना डूगरपुर पर अधिकार करने के लिए सुसज्जित कर भजी। उसे आदेश दिया गया कि वह नेफसागर' पर अपना थाना कायम करे और रावल से १२ वर्ष का दण्ड वसूल करे।

उस समय ग्रीष्म ऋतु थी। रावल भी इस प्रत्याशित आक्रमण स परिचित था। उसने अपने राज्य के माग म आने वाले गावो को खाली करवा दिया। उसकी प्रजा पहाडो और जगलो म जा बसी।

राणा की सेना म गजारोही अश्वारोही और पदल सनिक थे। इस अभियान का नेतृत्व महाराणा जगतसिंह ने अभयराज कावडिया को सौपा। उसके साथ भेजी हुई सेना म शक्तावत चूडावत सोनगरे सिंधल सोलकी राठौड और चौहान वीर थे। इस सेना म कई प्रमुख सरदार भी साथ भेजे ग जिनमे भमसेनका पुत्र रामसिंह(युद्ध,क्रीडा से हाथी का मारने वाला) गोपालदास का पुत्र किसनदास रावत मानसिंह के हा झाला शामसिंह का पुत्र माधोसिंह (महाराणा को चित्तौड पर स्थापित करन वाला) ईश्वरदास (तूदा का वशज), राठौड सावलदास नरहरदास का पुत्र जसवन्तसिंह, परमार इन्द्रभान, मानसिंह जस

१ प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११ पृ ५३ ५४ (पद्य म ८)

व तसिंह वछवाहा किसनसिंह का पुत्र वेरीशाल (वेरीसि), भाटी उदा(उग्रोतसिंह), राठौर सुन्दरदास उल्लेखनीय थे।

अक्षयराज की सेना के 'हरावल' (सेना के अग्रभाग) ने माग म अनेक स्थानों को उजाड दिया और थाना पर कब्जा कर लिया। फिर वह सोम नदी के किनारे पहुचा। इसका समाचार सुनकर रावल पूजा और उसका वागड प्रान्त चिन्तित हो गया। कोइ भी उसका साथ दन का तैयार नही हुआ। केवल चौहान सूजा (सूरजमल-सूयमल्ल) अपने गिने चुने चौहान वीरो के साथ रावल पूजा का पक्ष लेकर महाराणा की सना का मुकाबला करने सोम नदी के तट पर पहुचा। जब जब डूगरपुर पर बाहरी आक्रमण हुआ तब-तब वहां के चौहानों ने रावल का साथ दिया और वे आग बढकर शत्रु-सेना से लडे। इस बार भी जब राणा की सेना ने आक्रमण किया तो चौहान सूजा आगे बढा। युद्ध म लालसिंह का पुत्र भाण मारा गया। जब सूजा ने सुना कि उसके पक्ष का पृथ्वीराज युद्ध म मारा गया है, तब वह स्वय आग बढ़ा। युद्ध में रावत मानसिंह के साथ सूजा का सामना हुआ। रावत मानसिंह ने सूजा की छाती में कटार भोक दी। पृथ्वी पर गिरते गिरते भी सूजा ने दाव लगाकर दामोदर नामक व्यक्ति को मार गिराया। सूजा के मरने के बाद उसके पाच-दस वीरो ने सामना किया वे सभी मारे गये।

सोम नदी पर हुए इस युद्ध में विजयी होकर महाराणा की सना आगे बढी। डूगरपुर पहुच कर उसे चारो ओर से घेर लिया। अक्षयराज ने अच्छा सैन्य सचालन किया। रावल पूजा भी नोली नामक स्थान पर आ डटा। उस समय अक्षयराज की बन्दूक की गोली से पूजा के सिर पर आघात हुआ। वह टिक नही सका और भाग खडा हुआ। वह भागकर मदद के लिए मुगल बादशाह की सेवा म चला गया। शत्रुदल के कुछ वीरों ने सामना किया पर वे सब शीघ्र ही मार डाले गये।

मेवाड की सेना ने डूगरपुर पर अधिकार कर लिया। डूगरपुर को लूटा गया, वहा के दरवाजे बाजार ऊचे भवन गिरा दिये गये, मकानों मे आग लगा दी गई खभा को काला कर दिया गया, बाग-बगीचे-वृक्ष नष्ट कर दिये गये। इसके बाद महाराणा की सेना ने 'गेफसागर' पर डेरा डालकर विश्राम किया।

इसके बाद महाराणा का मंत्री अक्षयराज डूंगरपुर के प्रदेश को अपने अधीन कर वापिस उदयपुर लौट आया।[1]

रणछोड़ भट्ट ने 'अमरकाव्य' से लिखा है कि यह आक्रमण संवत १६८५ (१६२८ ई.) में किया गया था। इस अवसर पर रावल पूंजा अपने लोगों के साथ पहाड़ों में भाग गया। अखराज की सेना ने डूंगरपुर को लूटा और रावल के महल में लगा हुआ चन्दन का गोखड़ा गिराकर उसे साथ ले लिया। ऐसा ही वर्णन संक्षेप में 'राजप्रशस्ति' और 'जगन्नाथराय प्रशस्ति' में भी मिलता है।[2]

१ डूंगरपुर अभियान का यह वर्णन विदुर नामक चारण कवि ने 'झूलणा' नामक २५ पद्यों में लिखा है। इस गीत की प्रति का लिपिकाल सं १७७१ आश्विन शुक्ला दिया है। लिपिकार का नाम 'रायचन्द पचोली' लिखा है। यह प्रति रवि-शंकर देराश्री (बनेड़ा) के संग्रह में उपलब्ध हुई थी जिसका सम्पादन प्रकाशन 'प्राचीन राजस्थानी गीत' भाग ११, पृ ४२-७५ पर कविराव मोहनसिंह और सांवलदान आशिया ने किया है।

२ (अ) जगत्सिंहाज्ञया मंत्री अखैराजो बलान्वित ।
स डूंगरपुरप्राप्त पुंजानामाथ रावल ।
पलायित पातित तच्चन्दनस्य गवाक्षक ।
लुंटन डूंगरपुरे कृत लोकैस्ततस्तत ॥

(रा प्र सर्ग ५/१८-१९)

(आ) शते भवति षोडशेऽग्रयुते पंचकाशीति समिताब्दे ।
अखराज मंत्री वणिक् स डूंगरपुरे गत ॥
प्रबलसैन्यमालावृत पलायनपरोऽभूवत् ।
तदनु पुञ्जनामा नृपभटैविकटविक्रम ॥
अखैराजवाक्प्रेरितभटा युधि विखण्डिता ।
प्रबलरावलस्योदयाग विलुण्ठनमहोत्सवम् ॥
पुरवरस्य लोकरस्य सचन्दनगवाक्षक ।
सकलमुदवेस वेगत विन्ध्यघातो जगत्सिंह ॥
सत्पात्रञ्जनतिसुख तदनु तस्य चक्रे चिरम् ।
.... ॥

(अमरकाव्यम् २०।५-१९)*

'मंत्री' अक्षयराज कावड़िया की इस सफलता से महाराणा जगतसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। संभवतः अक्षयराज आजीवन मृत्युपर्यन्त 'मंत्री' पद पर कायम रहा।

भामाशाह के परवर्ती वंशजों को राज्य सम्मान और जातीय सम्मान

भारमल्ल, भामाशाह, जीवाशाह और अक्षयराज - इस प्रकार एक ही वंश की चार पीढ़ियों ने मेवाड़ राज्य की महान् सेवा की। विशेषकर भामाशाह की सेवाओं से मेवाड़ में युग परिवर्तन हुआ, चेतना की लहर प्रवाहित हुई और महाराणा प्रताप को अपने संघर्ष को जारी रखने तथा शांतिकाल में मेवाड़ में व्यवस्था स्थापित करने में अद्भुत सहायता मिली। कविराजा श्यामलदास ने ठीक ही लिखा है-

"भामाशाह के नाम से ओसवाल जात के हर एक महाजन को घमंड होता है, जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल जो अन्हलवाड़े के सोलंखी राजाओं के प्रधान थे, और जिन्होंने आबू पर जैन के मंदिर बनवाये, वैसा ही पराक्रमी और नामी भामाशाह को भी जानना चाहिये, जिसकी नौकरी के एवज में वर्तमान समय तक उसकी औलाद के कावड़िये महाजन, महाजनों के बड़े जल्सा में सबसे पहिले पगाली पर तिलक पाते हैं। अब उन लोगों में कोई मशहूर आदमी नहीं रहा, तो भी भामाशाह का नाम कुल मुल्क में मशहूर है।"[1]

भामाशाह के वंशज उनके पूर्वजों की मेवाड़ राज्य एवं जाति के प्रति सेवाओं को देखकर ओसवाल जाति में सबसे प्रतिष्ठित माने गये। जब कभी जाति-समूह का भोजन आदि सामूहिक कार्य होते तब सबसे पहले इस वंश के पुरुष को

---

*(६) देशे वागडनामके नरपतिं श्रीपुंजराजोजनि

श्रीमड्डूंगरपूर्वकस्य नगरस्याधीश्वरो दुर्जयः।

केनाप्यत्र न निर्जितो व(ब)हुमतिः सत्कोपवास्त

पुनर्यन्मंत्री कृतवान् पराङ्मुखमहो दग्धं पुरं चाकरोत ॥

(जगन्नाथराय प्रशस्ति, शिला १, श्लो ५४)

यहां मंत्री का नाम नहीं दिया है।

१ वीरविनोद, भाग २, पृ २५२

सवप्रथम तिलक करने का रिवाज बन गया था। परन्तु बाद म जब उनके वशजा के पास पद,प्रतिष्ठा धन और वभव की कमी होगई तो शिरारीक ग्रन्य प्रतिष्ठित लोगो को उनको प्रथम तिलक निकालने की बात ग्रखरने लगी। काल की गति बडी विचित्र होती है। तब ओसवाल महाजना की पचायत ने इस नियम को भग कर दिया। इस सम्बन्ध में जब महाराणा स्वरूपसिंह को निवेदन किया गया तब महाराणा के आदेश से उनके पूवजो की निष्ठा और सेवा को पुन याद करते हुए आदेश जारी किया गया कि ओसवालो की जाति मे बावनी (सपूण जाति का भोजन), चौके का भोजन और सिंहपूजा' के अवसर पर भामाशाह के मुख्य वशज को प्रथम तिलक निकाला जाय। इस सम्बन्ध मे एक परवाना महाराणा स्वरूपसिंह ने वि स १९१२ (चत्रादि १९१३) ज्येष्ठ सुदि १५(१८५६ई) को जयचन्द, कुन्दन और वीरचद इन तीन भाईयो के नाम कर दिया।[1] तब से पुन इनको जाति-सम्मान और तिलक निकालना प्रारम्भ हुआ। इस परवान के द्वारा जाति के पचो को कावडिया वश के पारम्परिक सम्मान को अक्षुण्ण और नियमित रखने का आदेश दिया गया।

शाह कुन्दन के दो पुत्र हुए सवाईराम और अम्बालाल। अम्बालाल मेवाड के सरदार उमराव की वकालात का काम किया करता था इसे भाडोल के तत्कालीन सरदार ने चोकडी ग्राम जागीर मे दिया था। शाह अम्बालाल के समय मे ओसवाल जाति द्वारा पुन उनके वशानुगत सम्मान के प्रति उपेक्षा की गयी। अतएव महाराणा फतहसिंह के काल म सवत १९५२ कार्तिक सुदी १२ (१८९५ई) को मुकद्दमा फसल होकर भामाशाह के मुख्य वशज को तिलक निकालने की आज्ञा जारी की गई।[2] शाह अम्बालाल का स्वगवास वि स १९७६ मे हुआ। इसके तीन पुत्र हुए- बहुलताल, अमरसिंह और मनोहरलाल। बहुलताल के दो पुत्र कालूलाल और छगनलाल हुए। कालूलाल वकालात का काम करता था तथा छगनलाल पुलिस विभाग में था। मनोहरलाल के दो पुत्र रोशनसिंह और जसवतलाल हुए।[3]



---

१ यह परवाना- देखें परिशिष्ट

२ डा गौरीशकर हीराचन्द ओझा, 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २, पृ १३०४

३ ओसवाल जाति का इतिहास, पृ ७४

6. भामाशाह की पुत्री 'जगीशा बाई' का वंश

भामाशाह की एक पुत्री थी जिसका नाम जगीशा बाई मिलता है। इसका विवाह बीकानेर के सुप्रसिद्ध बच्छावत परिवार के कमचन्द के साथ हुआ था। कमचन्द संग्राम का पुत्र था। इस वंश मे प्रारम्भ से ही सब लोग बीकानेर राज्य के मन्त्री रहे। राव बीका ने जांगल प्रदेश में बीकानेर की स्थापना की एवं अपने स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। वत्सराज उसका मन्त्री रहा। वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। वत्सराज के वंशज बच्छावत मेहता कहलाये। इस वंश में वत्सराज का पुत्र कर्मसिंह राव लूणकरण का मन्त्री बना कर्मसिंह का छोटा भाई वरसिंह राव जैतसिंह का मन्त्री बना उसके बाद वरसिंह का छोटा पुत्र नगराज भी राव जैतसिंह का मन्त्री रहा। जैतसिंह के पुत्र राव कल्याणसिंह के काल में भी नगराज मन्त्री रहा। नगराज का छोटा पुत्र संग्राम शेरशाह सूर के पास रहा। तीर्थयात्रा प्रसंग से चित्तौड़ आने पर संग्राम को महाराणा उदयसिंह ने सम्मानित किया था। संग्राम का पुत्र कमचन्द हुआ, उसे राव कल्याणसिंह ने नगराज की मृत्यु के बाद अपना मन्त्री बनाया। कल्याणसिंह के पुत्र राव रायसिंह के काल में भी कमचन्द मन्त्री पद पर बना रहा। किसी कारण से सम्भवतः रायसिंह को मारकर उसके पुत्र दलपत को गद्दी पर बिठाने के षडयंत्र में कमचन्द के सम्मिलित होने की आशंका के कारण, राव रायसिंह इससे नाराज हो गया, तब वह परिवार सहित अकबर के दरबार मे आकर रहने लगा। कमचन्द की मृत्यु के बाद रायसिंह ने उसके दोनों बड़े पुत्र सौभागचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र को बीकानेर बुलवाकर मरवा डाला। "कमचन्द की एक स्त्री जो भामाशाह की पुत्री थी अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर में थी, जिससे उसका वही पुत्र बचने पाया।[1]

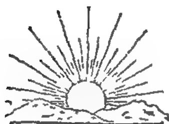
भाण का पुत्र जीवराज, जीवराज का लालचन्द और लालचन्द का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। पृथ्वीराज के दो पुत्र हुए अगरचन्द और हंसराज। अगरचन्द

---

१ डॉ ओझा, राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ १३१४

को महाराणा अरिसिंह ने मांडलगढ़ का किलेदार नियुक्त किया था। तबसे दीर्घकाल तक उसके वंशजों के पास यह किलेदारी बनी रही।

डा. ओझा का मानना है कि- 'उदयपुर के मेहताओं की तवारीख में भाण को भोजराज का बेटा लिखा है। संभव है कि भोजराज या तो कर्मचंद का तीसरा पुत्र हो या भागचन्द और लक्ष्मीचन्द में से किसी एक का पुत्र हो। यदि यह अनुमान ठीक हो तो भामाशाह की पुत्री का विवाह भागचन्द या लक्ष्मीचन्द में से किसी एक के साथ होना मानना पड़ेगा।'[1]



---

१ डा. ओझा, 'राजपूताने का इतिहास' जिल्द २, पृ. १३१८ पर पादटिप्पणी

7. परिशिष्ट

1 पुरालेखीय और साहित्यिक

प्रमाण-सग्रह

1 ताम्रपत्र

2 शिलालेख

3 परवाना

4 पट्टावली

5 साहित्यिक ग्रन्थ

1. ताम्रपत्र

शाह भारमल की उपस्थिति मे जारी किये गये ताम्रपत्र

नदराय का ताम्रपत्र

श्रीरामजी

श्रा गणेसजो सुप्रसाद   श्रीऐकलगजी सुप्रसाद

[भाला]

सही

1 ।। सिद्ध श्री माहाराजिधिराज माहाराणा श्री श्री
2 उद्व स्यघजी प्रादेसातु पुय श्री ब्रामण जोसी
3 हरदावला रा न रो कली पुतर ग्ररज कीधी गढ
4 चत्रकोट मह पुनि सुरज परव ग्रामाव
5 स्या सोमोती मह उदक कीधो प्रगणा माडलग
6 ढ रै गाम नदराय मह हल ४ री घरती उदक
7 द घी बीघा ४५१ ग्रपरे च्यारे सक ग्रक्वन
8 घ्रीती बीगती————————————
9 वाडी ग रवो पीवरा माल तथा मगरा ग्रपद
10 त प्रदत्ते जे पालत वमघरा जे नरा ग्रमरा पु—
11 र पोह्राच तत्र वलगन ददे वा धरा ग्रपदत्त
12 प्रदतु जे लोपत वसुघरा ते नरा नरका जायते
13 वलगन ददे वा करा दसकत साहा भार
14 मल रा मोती माह बद ऽऽ सामे स १६१५

यह ताम्रपत्र राजकीय ग्रभिलेखागर उदयपुर मे क्र १६८/१ पर सुरक्षित है। यह ग्रप्रकाशित है।

इसमे ब्राह्मण जोशी हरदयाल के पुत्र द्वारा चित्रकूट (चित्तौड) मे निवेदन करने पर महाराणा उदयसिंह क ग्रादेश से माडलगढ परगने के ग्रन्तगत न'दर य नामक ग्राम मे ४ हल ४५१ बीघा धरती सवत १६१५, माघ वदी ग्रमावस्या सोमवार के दिन दान मे दी गई। इस पर शाह भारमल ने दस्तखत किये।

कमल्यावास का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्रीगणेसप्रसादात श्रीएकलिंगप्रसादात

[भाला]

सही

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री उदेस्यघ आ

2 देशात् जोसी चडीदास महेसाय लोम

3 कूरसा कस्य गाम १ कमल्यावास आघाटे

4 उदके दत्ता गाम ऐंदापेडी रे बदले दीधो

5 सवत १६२२ वर्षे मागसीर सु १५ बुधे श्री

6 मुप वीदमान स्याह भारमल लीषत पचोली

7 गोवधन स्वदत परदत वा यो हरती वसुधरा

8 षष्टी र वष सहस्राणी वीस्टाया जायते क्रम

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में सुरक्षित है। यह अबतक अप्रकाशित रहा है।

इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा उदयसिंह ने जोशी चडीदास महेश को कमल्यावास नामक ग्राम दान में दिया था। यह गाम ऐंदापेडी के बजाय दिया गया था। इस ताम्रपत्र को संवत् 1622 मार्गशीर्ष शुक्ल 15 के दिन शाह भारमल की उपस्थिति में पचोली गोवधन ने लिखा था।

भामाशाह की उपस्थिति मे जारी किये गये ताम्रपत्र और परवाने

सथाणा का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात् श्री एकलि(गप्रसादात)

[भाला]

सही

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप—

2 स्यघ आदेशात आचाय बालाजावा

3 कीसनदास बलभद्र कस्य गाम १ सथा

4 गो मया कीधा उदके आघाटे दत। कू
5 भलमेर मध्ये सवत 1633 वर्षे भा
6 द्रवा शुदी 5 रोवो दुए श्री मुषे प्रतीदु
7 ए दादा रायजी साह भामा पहला प
8 तर वले गुयो लुट्या तठे गया सु नवो करे
9 मया दीधो साम पीपली वण ढ़ेडा पा
10 स पड सी सीम थी सुसाल सुधी दीघो

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजस्थान अभिलेखागार कार्यालय उदयपुर म सुरक्षित है (फोटोग्राफ स 26/133)। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के आदेश से आचाय बालाजीवा किशनदास बलभद्र को सथाणा नामक गाव भाद्रपद शुक्ल 5 सवत् 1633 रविवार (25 नवम्बर 1576 ई) को दिया गया। इसे भामाशाह ने जारी किया। मूल ताम्रपत्र लुट गया था अत यह नया बनाकर दिया गया।

सथाणा गाव काकरोली रेलवे स्टेशन से 12 मील दूर स्थित है।

पीपली का ताम्रपत्र

श्री रामा जयति

।। गणेस प्रसादात [श्री एकलिंग प्रसादात]

[भाला]

सही

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्य
2 घ आदेशात आचाय बालाजीवा कास्नदा—
3 स बलभद्र कस्य गाम १ पीपली मया कीधा
4 उदके आघाटे दत। कूभलमेर मध्य स
5 वत् 1633 वष भाद्रवा शुदी 5 रोवा दुए
6 श्रीमुप प्रतीदुए दीदारायजी साह भामो
7 पहला पतर वले गुहा लुट्यो तठ गया सु
8 नवा करे मया दीधा

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजकीय अभिलेखागार उदयपुर म सग्रहीत है।

यह ताम्रपत्र जगदीशप्रसाद आचाय के पास है। इनका परिवार उदयपुर म आचार्यों की पोल जगदीश चौक मे रहता है। इनके पास अब तक पीपली गाव

रहा, ग्रन ये लोग 'पीपली के ग्राचाय कहलाते हैं। ताम्रपत्र म कहा है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भल्गढ म रहत हुए ग्राचाय वालाजीवा किसनदास वलभद्र का भाद्रपद शुक्ला 5 सवत् 1633 रविवार का पीपली नामक गाव दिया था। इस ताम्रपत्र को भामाशाह न जारी किया था। मूल ताम्रपत्र खो जान पर यह नया ताम्रपत्र बनाकर दिया गया।

यह विशेष द्रष्टव्य है कि ग्राचार्य जगदीशप्रसाद के पास वाले ताम्रपत्र म जो महाराणा प्रताप स्मृतिग्र थ मे छपा है, तिथि सवत् 1633 भाद्रपद शुक्ल 11 रविवार दी है।

मही का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

[भाला]

सहो

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्यध
2 ग्रादेशात् ग्राचाय वालाजी का कीस्नदास
3 वलभद्र कस्य गाम महीम्। हेरहट 3 ग्रग
4 री क ब्है सु मया कीधा दुइ उदक ग्राघाट द—
5 त। सवत 1633 वर्षे ग्रासोज वदी 6 भुमे
6 कूभलमेर मध्ये दुए श्रीमुपे प्रतीदुए
7 साह भामो पुर्वा रीत ब्हे सु मया कीधो व
8 ले गुठो लुटयो तृठ पतर गया था मु नव्या
9 करे मया कीधा

यह ताम्रपत्र राजकीय ग्रभिलखागार उदयपुर म स 1288 पर सग्रहीत है।

इस ताम्रपत्र की एक प्रति ग्राचाय जगदीशप्रसाद जगदीश चौक, उदयपुर क पास है। इसमे बताया गया है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भलगढ म रहन हुए ग्राचाय वालाजी का किशनदास वलभद्र का मही (मोही) नामक गाव म 3 रहट ग्राश्विन कृष्णा 6 मगलवार स 1633 को दिए थ। यह ताम्रपत्र शाह भामाशाह न जारी किया था। पहले महाराणा उदयसिंह द्वारा ताम्रपत्र बनाकर दिया गया था वह लुट जाने पर पुन यह नया ताम्रपत्र बना कर दिया गया।

माही गाव काकरोली रेलवे स्टेशन स करीब 4 मील दूर है।

ओडा ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात् श्री एकलिंग प्रसादात

[भाला]

सही

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप
2 स्यघ आदेशातु प्रोहोत राम भगवा
3 न वासी वस्य गाम १ ओडा मया कीधा
4 उदकै आघाट दत। पहली उदक रा
5 णा श्री उदेस्यघ रो थो सु पतर गागुद क
6 टक आयो त दीम। दड। माह् गयो सु पत
7 र नवा करे मया कीधो कुभलमेर मधे
8 स 1634 वर्षे मागसीर वदी 3 भूमे
9 दुए श्रीमुख प्रतीदुए साह भामा ली
10 पत पचोली जेता

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर मे न 879 पर सगृहीत है। मूल ताम्रपत्र अब तक अप्रकाशित रहा है, इसका हिन्दी सार डॉ ओझा ने राजपूताने का इतिहास जिल्द 2 पृ 774 पर दिया है।

इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रताप ने ओडा नामक ग्राम पुरोहित राम भगवान वासी को पुण्यार्थ दिया था। पहले इस गाव को महाराणा उदयसिंह ने दान मे दिया था परन्तु गोगूदे की लड़ाई (हल्दीघाटी युद्ध जून 1576 ई) के दिनो मे उसका ताम्रपत्र खो गया इसलिए यह नया बनाकर दिया गया। इसकी आज्ञा भामाशाह के द्वारा पहुची और पचोली जेता ने इसे लिखा है।

पुरोहित राम सनाढय ब्राह्मण था वह कोठारिया के चौहानो का पुरोहित था। बनवीर के काल मे कुभलगढ की गद्दी पर उदयसिंह को बठाने वाले सरदारो मे कोठारिया का रावत खान प्रमुख था। उस पर पूर्ण विश्वास होने के कारण महाराणा ने विश्वसनीय सेवको को रावत से ही लिये थे उनमे पुरोहित राम भी था। तब से उसके वशज उदयपुर मे रहते हैं।

मृगेश्वर का ताम्रपत्र

1 महाराजाधिराज महारा
2 णा श्री प्रताप स्यघजी आदे
3 सातु चारण कान्हा हे गाम
4 मीरघेसर दत्त मया कीधो
5 आघाट करे दीधो सवत् 1639 वर्षे
6 फागुण सुदी 5 दुए श्री
7 मुख वीदमान साह भामासाह

इस ताम्रपत्र को मुशी देवीप्रसाद ने सरस्वती' भाग 18 सख्या 2 पृ 95 98 पर प्रकाशित कराया था। इसका आशय यह है कि महाराणा प्रताप के आदेश से शाह भामाशाह ने मीरघेसर (मृगश्वर) नामक गाव चारण कान्हा को फाल्गुन शुक्ल 5, सवत् 1639 को दिया था।

मृगेश्वर गाव गोडवाड क्षेत्र मे (वतमान पाली जिले मे) स्थित है। का्हा सादू चारण था और चित्तोड के निकट कुम्पखेडी का निवासी था। इसने महाराणा की सेना म हल्दीघाटी म युद्ध किया था। इस युद्ध के वणन के सबध म उसने एक गीत बनाया जिस डॉ देवीलाल पालीवाल न 'प्राचीन डिंगल काव्य म महाराणा प्रताप' ग्र थ म गीत स 36 पर प्रकाशित कराया है।

मुशी देवीप्रसाद न इस ताम्रपत्र के साथ 'दन्तालपत्र' को भी प्रकाशित किया है। चारण लोग ताम्रपत्र के भाव को कण्ठस्थ करन के लिये छद्म बद्ध कर लिया करत थे, उस दन्तालपत्र कहा जाता था।

तिथि-पत्रक स ज्ञात होता है कि उक्त तिथि को गुरुवार नही अपितु शनिवार था।

बाघण का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्रीगणेश प्रसादात श्री एकलिंग प्रसादात

[भाला]

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री
प्रतापसिंघ आदेशतु आयस आणदनाथ
वस्य हल 4 दुरी धरती गाव वाघण

सीधरी माह पली छे समद कीदी
स 1645 वर्षे आसाजब्द 7 दुव
श्री मुख प्रति दवै साह मामा

यह ताम्रपत्र रामकिशन जाशी किशनगढ को मिला था। इसका प्रकाशन श्राय रामचन्द्र तिवारी ने जनल आफ दि युनिवर्सिटी श्राफ बोम्बे' वाल्युम 31 पाट 4 पृ 50 पर कराया था। प्रस्तुत ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के आदेश स म 1645 आश्विन कृष्णा 7 को श्रावस प्राणदनाथ के मीदरी के वाघण नामक ग्राम म 4 हल (1 हल=लगभग 3 बीघा) भूमि दी गई थी। इसे शाह भामाशाह ने जारी किया था।

गाव पडेर का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशजी प्रसादातु श्री एकलिंगजी प्रसादातु

भाला (चिह्न)

सही (चिह्न)

सिव श्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्री प्रताप
सींघजी आदेशातु तिवाडी सादुलनाथरा
भवान काना गोपाल टीला धरती उदक आगे
राणांजी श्रीजी तावापत्र करावे दीधो थो
प्रगरा जाजपुर रा गाम पडेर मदे हल ११
धरत वीगा गारा करे दीधो श्री मुष हुकम
हुश्रो साह भामा सवत १६४५ काती
मुद १५ महाराणाजी श्री उदेसिंघजी रा दत्त

इस ताम्रपत्र की फोटो-प्रति राजस्थान अभिलेखागार उदयपुर के कार्यालय म (फोटोग्राफ न 368) सुरक्षित है। इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह द्वारा तिवारी सादुलनाथ काना गोपाल को जहाजपुर परगने के अतगत पडेर नामक गाव म 11 हल भूमि दी गई थी। इसे शाहभामा ने सवत् 1645 कार्तिक शुक्ल 5 (24 अक्टूबर 1588 ई) को जारी किया था। यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह द्वारा पूव म दिये गये ताम्रपत्र का नवीनीकरण करके दिया गया है जो समवत खोगया होगा।

डाइलाणा का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गुणेस प्रसादात् — एकलिंग प्रसादात

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंघ
आदेशात् चाधरी राहीतास कस्य ग्रास
मध कीधो ग्राम डाहीलाणा वडा
माहे खेत 4 वरसाली रा उदक आघाट
१ पेंत वडयाना १ पेंत राजावो १ पेंत
५१ पत्सा १ पाज्येजवा ४ भोग कलसी
४॥ अ (र) हट १ साणवे भाग कलसी
४॥ देसी स १६५१ वर्षे आसोज
सु० १५ दव श्री मुख वीदमान
सा भामा ।

डाइलाणा ग्राम गोडवाड क्षेत्र (जिला पाली) में स्थित है। इस ताम्रपत्र को शिवसिंह चोयल ने राजस्थान भारती भाग 3 अंक 3 4, पृ 35-36 पर प्रकाशित कराया था। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह ने चौधरी राहातास को डाईलाणा ग्राम में 4 खेत और 1 रहट दिये थे। इसमें वर्षा का विवरण दिया गया है। इन खेतो पर जो कर लिया जाता था उसका उल्लेख कलसी में दिया है। कलसी अनाज मापने का एक पात्र होता था। पायला या पायला के साथ कलसी शब्द की माप विशेष के अर्थ में प्राचीनकाल से उस क्षेत्र में प्रचलित था। गोडवाड के चौहानों के शिलालेखों में इसका उल्लेख मिलता है। इस ताम्रपत्र को शाह भामा की उपस्थिति में दिया गया था।

परवाना

श्री रामो जयती

श्री गुणेस प्रसादातु — श्री ऐकलींग प्रसादातु

[भाला चिह्न]

सही

1 स्वस्ति श्री कटक दन का डेरा सुथाने माहाराज श्रीराजम
2 हाराणा श्री प्रतापसीघजी आदसातु आचारज वाया प्रल

3 भद्र कस्य । ग्रप्रचे० वेणीदास तो जगडा मे काम ग्रा
4 य्यो ने थे कड़ी चता करो मती रुगनाथ रो पात्री रेवे
5 गा ऐक दाए रगनाथ ने पेतावा भेजजो थे पी जमा पात्री
6 रावजा रुगनाथ रे बाप थो हजुर हु थे कड़ी चता करो मती
7 दुवे श्री मुप साहा भामा समत 1634 को पोस सुद १०

यह परवाना मूल रूप म जगदीशप्रसाद माचाय भाचार्यो की पोल जग्दीश चौक उदयपुर के पास है। इसके अनुसार वेणीदास व युद्ध मे मारे जाने के बाद श्राचाय बाबा वलभद्र को महाराणा की ग्रोर स यह सात्वनापत्र लिखा गया है। सभवन वेणीदास उमका पुत्र था। वेणीदास का पुत्र रुगनाथ था उसकी देखभाल की जिम्मदारी महाराणा स्वय ने ग्रपने ऊपर ली थी। इस शाह भामा द्वारा स 1634 पोप शुक्ला 10 को लिखा गया था।

साह अखेराज की उपस्थिति मे जारी किये गये ताम्रपत्र

ठीकरया ग्राम का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्री गणेंस प्रसादातु श्रीऐकलिंग प्रसादातु

[भाला]
सही

1 ।। महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंघजी
1 ग्रादेशातु गढवी पीमराज जात घघवाडा
3 कस्य १ गाव ठीकर्‌यो वडा उदक ग्राघाट क
4 रे मया कीधो दुवे श्रीमुप प्रतदुवे साह ग्रप
5 राज लीपत पचोली केसोदास स्वदत पर
6 दत जे हरत वीसधरा पस्ट वरस सेहमरा —
7 ए वीस्टाग्र जाईते क्रम सवत १६८५
8 व्रपे ग्रसाढ वदी 3 सुक्रे

ताम्रपत्र के बायीं ग्रोर ऊपर से नीच खडी एक पक्ति लिखी है—

१ भाई पीमराज घघवाडाहे दीधोजी १

ताम्रपत्र के पृष्ठभाग में अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षरों में निम्न पंक्तियां अंकित हैं—

1 स० १७०२ अषे माह सुदी ५ गुर घरा वास की
2 घो तदी भया अर राणें श्रीजगतसघजी
3 गाम रो नाम करे षेमपुर नाम दीधो

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में स 1398 पर सुरक्षित है। यह वीरविनोद, भाग 3 पृ 380 एवं राजस्थान के इतिहास के स्रोत (डा गोपीनाथ शर्मा) भाग 1 पृ 257 पर भी छप चुका है। इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह की आज्ञा से गढवी (चारण) खीमराज दधिवाडिया को सवत् 1685 आषाढ वदी 3 गुरुवार के दिन ठीकरिया नामक ग्राम दिया गया। इसे शाह अपराज ने जारी किया और पचोली केशोदास ने लिखा था। ताम्रपत्र के पीछे लिखी हुई पंक्तियां से ज्ञात होता है कि स 1702 में महाराणा जगतसिंह खीमराज के घर ठीकरिया ग्राम में पधारे थे तब उस गांव का नाम खीमराज के नाम पर खेमपुर रखने का आदेश दिया। उदयपुर के पुराने रेलवे स्टेशन के पास खेमपुरा ग्राम भी विद्यमान है।

आधाखेडी ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेस प्रसादातु श्रीएकलिंग प्रसादातु

[भाला]

सही

1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्रीजगतसिं—
2 घजी आदेशातु भट बासदेव कस्य गाम ॥
3 आघीपेडी उदक आघाट करे रामा अरपण
4 कीधो गढवो तोडरो तल्हेटी दुवे श्रीमुष
5 सवदत परदत जे हरत वीसधरा पस्ट वर
6 ष सेहसराणि वीसटाम्र जाइते नीम प्र
7 त दुवे साह अपेराज सवत् १६८५ वषे भा
8 दवा सुदी ८ गुरे लीषत पचोली केसोदास

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में न 1661 पर सुरक्षित है। यह अब तक अप्रकाशित है।

इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह(प्रथम)के आदेश से भट्ट वासुदेव को आधीखेडी ग्राम रामार्पण करके (दानस्वरूप) संवत् 1685 भाद्रपद सुदी 8 गुरुवार के दिन दिया गया था। यह ताम्रपत्र शाह अपराज की उपस्थिति मे लिया गया।

ग्राम गुणहड का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्रीगणेसप्रसादातु श्रीएकलिंग प्रसादातु

[भाला]

सही

1 ।। महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंघ
2 जी आदेशातु जोसी धरमदास कस्य गाम
3 गुणहड माहे हल १ ऐक री धरती उदक आ
4 घाट करे रामा अरपण कीधो छीणीरा पेह
5 ला पेत छ ज्या मौये हल ऐक री धरती दीधी
6 दुवे श्रीमुष प्रतीदुवे साह अपराज ली
7. पत पचोली केसादास सवदत परदत जे
8 हरत वीसधरा पस्ट वरस सेहसराणी वी
9 सटाम्र जाईते क्राम सवत १६८६ वर्षे
10 भादवा वदी 10 सोमे पत धरमदास रा

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में क्रमांक 941 पर सुरक्षित है।

इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह के आदेश से जोशी धमदास को गुणहड ग्राम में एक हल धरती संवत् 1686 भाद्रपद वदी 10 के दिन दी गई। इस धमदास ने लिखा है। इसको शाह अपराज की उपस्थिति मे दिया गया।

★★

2. शिलालेख

सादडी की तारा-बावडी का शिलालेख

(1) ॐ ।। श्री गणेशाय नम । श्री ब्राह्मण नम ।।
(2) (श्री) लक्ष्मीनारायणाय नम ।। श्री उमामहे
(3) श्वराय [राम्या] नम ।। ग्रथ श्री नर्पविक्रमार्क समय (या)
(4) त् ।। सवत् 1654 वर्षे शाके 1520 प्रवतमान
(5) महामागल्यप्रदवशापम(ा)स कृष्णपक्षे द्वि
(6) तीयाया तिथौ ब्रहस्पत्त(ति)वासरे श्रीसादडी
(7) नगर ।। महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री
(8) ग्रमर शघजी विजयराज (ज्ये) उमवाली नाती
(9) य कावडीय गोत्र श्रावक नरद गिराजमा।
(10) साह् श्री भारमल वङ्कुाया शीलालवरघा
(11) रणी ग्रनक्तुल्य पुरुवाद (पेक्ट) महापुण्यकार
(12) णी नादेवा गोत्रगावि(य)गोगगाजलनिमला
(13) मात श्री कपूरनाम्नि तयस (तस्या) पुत्रस्य
(14) ताराचदस्य एकादशसतीसहित (?) सपुयथ (पुण्यार्थ)[1]
(15) श्रेयार्थ श्रीनागावावि नामक तीर्थ कारित
(16) तत्पुत्रेण साह् सरताण (सुरताण) जीनाम केन प्रत (नि)
(17) पल्यमान बिजीयोना (विजगाना) [म्] शुभ भवतु । 5
(18) यावद् कूर्म्मधृता धरा विजयते यावद्भुजगा
(19) धिप पाताले पवमानपूरिततनुर्यावद्रवि
(20) श्चन्द्र । तावत्तिष्ठतु तीर्थमेतदमल वा
(21) पी महामहपा साह् श्री सुरताणेन वि
(22) हित मागल्यपुष्टिप्रद ।। श्रीरस्तु । श्री ।।

[1 शुद्धरूप— स्य पुण्यार्थं]

ताराचद की छत्री में लगा हुआ शिलालेख

पक्ति 1 ।। श्री गणधराय नम ।। स्वस्ति श्री ऋद्धि वृद्धि जयो मगला भ्युदयश्च।। ग्रथ श्री विक्रम सवत् 1648 वर्षे वशाख मासे कृष्ण

" 2 पक्षे ग्रष्टमी तिथौ भौमवासरे गगाजलनिर्मली वा श्री ग्रोसवाल नातौ कावेडिया गोत्रे शाह ठाकुर साहब श्री

" 3 108 श्री भारमलजी गृहमाया (यौ) व पू श्री मेवाडी तत्पुत्र शाह ठाकुर साहब श्री 105 श्री ताराचन्दजी

' 4 स्वर्गारूढो जात तस्य पत्नि श्री तारा‍े 1 श्री त्रिजवणदे 2 श्री मसूरदे 3 श्री सोभागदे 4 श्री वीरा हूदे 5

' 5 सहगत । पचमि मेतरी सहगत 6 ।। तथा ।। गणिका कामरेखा 1 गुणसूरदा 2 वसतमाला 3 फूलमाला 4 दोरी

6 ला 5 मोहिनी 6 एतानि सहगमन कृत ।। सवद् 1649 वर्षे कार्तिक सुदि 15 साम एषा छत्री कीनी ।। श्रीरस्तु ।।

' 7- श्री छत्री रा जीर्णोद्धार व नवीन मूर्ती स्थापन सवत् 2013 चत्र सुदि 10 गुरुवासरे कीनी ।। श्री रस्तु ।।

3. परवाना (स 1912)

श्री रामो जयति

श्रीगनेसजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

[भाले का निशान]

[सहीं]

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघ ी आदेशात् कावडया जचद कुनणो वीरचदकस्य प्रग थाग बडा नामा भामो कावडया ड राजम्हे साम धमासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठठहू ज्या ह म्हाजना की ।तम्हे वावनी ज्या चौका की जीमण का सीग पूजा होवे जीम्हे पहली तलक थारे होतो हो सो अगला नगरसेठ वेणीदास करसो कर्यो अर वदयाफ्त तलक थारे नहो करवा दीदा अबारू थारी साचमी दीवी सा नगे कर सेठ पेमचन्द न हुकम कीदो सो बी भी अरज करी अर यात म्हे हुक्मर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुर के थ थारो करायो जा ो थागासु धारा वस को ज्यावेगा जी क तलक हुवा जावगा पचान वो हुकुम कर दीय्या है सो पेला तलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सरूपसीघ सवत् 1912 जठ सुद 15 बुधे।

[यह पत्र हिंदुससार, दीपावली अक कार्तिक कृ 30 वि स 1982 म छपा है।]

4. पट्टावली

नागपुरीय लु कागच्छ पट्टावली

॥ ॐ शिव ॥

॥ स 1616॥ चित्रकूट महादुर्गे वावडिया वयो भारमल्लो धनो तपागणीयोभूत् । तेन श्री देवागरसूरीणामभिधान शुद्धक्रियाधारकत्व च श्रुतम् । तदादित एव तद्गुणरञ्जित चेतस्कोऽवदत् ।

श्लोक —

धन्यो देवागरस्वामी प्रदीपो जनशासन ।

एष एव गुरुर्मेऽस्ति धन्योऽह तन्निदश इत् ॥ 11 ॥ गा 9

इति भावनया शुद्धात्माऽभूद् भारमल्ल तस्मिन्नवसरे तत्रत्यो भोमा नामा नाहटोऽस्ति । तद्गृहेषु पुण्ययोगाद्दक्षिणावत्त शख प्रादुरभूत् । तत्मान्निध्यात् गृहेऽष्टादश कोटयो धनस्य प्रकटी भवति ।

अथ षडमासी प्रात शखदेवेन भोमाकस्य स्वप्न दशन दत्त निवेदित च ॥ भोमो साह त्व शृणु । तव भार्याया उदरे पुत्रीत्वेन कश्चिज्जीव समेतोऽस्ति वावडिया भारमल्लभार्योदरे सुकृती कश्चन् जीव सुतो भवतीर्णोऽस्ति । ततस्तत्पुण्यप्रेरितो भारमल्लवावडिया गृहे गमिष्यामि इत्याकण्य भोमाको वन्द् एव मा याहि यथाह करोमि तथा गच्छेत्युक्ते स नामेति भणितम् ।

प्रथाहमुखे जाते सवस्वजनसहित शखस्वनजागरूकीकृतानेकलोक स्वणस्थाले दक्षिणावत्तशख निधायातिमहाघ्यवस्त्रेणाच्छाद्य भामाको भारमल्ल भवनाभिमुखमागतास्तमायान्तमालोक्य सानद सादर भारमल्लोऽभिमुख मिलित पृष्ट च किमागमनप्रयोजन । प्रोच्यतामित्युक्तो भामाकोऽवदद् कर्ण भो [1] ; सामयसम्बधिन् मम पुत्री तव पुत्रो भविष्यति तयो सम्बध कत्तु श्रीफलस्थाने इदमद्भुतमहात्म्य शख ददामि इत्यान तयो समुत्पन्नपरमामोदो बहुतदानमानपूवकमगृहीत भारमल्ल गृहकोष्ठका त समभ्यच्य सम्यक चदन चतुष्किकोपरि सस्थाप्य सस्मृतो देवस्तेनाष्टदशकोटि धन तत्र प्रकटित कृत । एकदा तत्र वनान्त रुचमण्डपाद्यो धमध्यान विदधत् साधुगुणग्रामाभिरामा श्रीदेवागरस्वामी शुद्धतपावनो भारमल्लेन दृष्टो विधिवद् वन्दितश्च । शुद्धधर्मोप देशामृत पीत श्रवणाभ्याम् । अतिप्रसन्नेन भारमल्लेन विपृष्टमहो [1] महान् माग्योन्यो मे प्रकटितो यदीत्य् गुणगौरवो दृष्ट सर्वेऽर्था मे सरस्यति । तदा भारमल्लो ऽथ च बहव श्रावका जाता नागोरीलुकगणीया ।

अथ भारमल्लस्य भामानामसुतोऽजनि । महान् मह कृत । सर्वत्र मार्गिनार्ऽथिजनमनोरथा पूरिता अथापि ताराचन्द्राख्य पुत्रा अभवन् । तत्र भामाशाहताराचन्द्रौ विश्रुता जातौ । स्वगच्छरागेण बहवो जना स्वगण पुन श्रीराणाजीतामात्यपद लब्ध्वा बलिनौ जातौ । ताराचन्द्रेण सान्डानाम नगर स्थापितम् । सर्वत्र पौषधशालादिकानि स्थानानि धारितानि । स्थान स्थान पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनम्यो धन दाय दाय स्वगणीया कृता । श्रीनागोरीलुकागच्छोऽनिस्थापितमपि । पुन भामाशाहेन निम्बरमतगा नर्मिपदौरा स्वगण समानीता । बहुम्व दत्वा 1700 गृहाणि त स्मारमीयानि कृतानि । भिण्डरआदिपुरेषु तन्न च जात श्रावकगृहाणा चतुरशीतिसहस्राधिक नमतम् ।

(श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा लिखित भामाशाह विषयक जिज्ञासाओं का समाधान नीयक लेखमाला वीरशासन' में क्रमश प्रकाशित हुई थी । उसी लेखमाला म वीरशासन क 1 जनवरी 1953 क अक पृ 7 पर प्रकाशित नागोरी लुकागच्छ की संस्कृत भाषा की पट्टावली स उद्धृत की गई है । इस लेखमाला म दो पट्टावलियाँ प्रकाशित की गई हैं– एक संस्कृत मे एक दूसरी लोकभाषा म । संस्कृत भाषा की पट्टावली म लोकभाषा की पट्टावली की अपेक्षा विस्तार से वर्णन दिया गया है साथ ही लोक भाषा की पट्टावली भी संस्कृत की पट्टावली पर आधारित है ।)



5. साहित्यिक ग्रंथ

भामावावनी

भामावावनी की रचना विरं बारहठ नामक कवि ने की थी। इसके नाम का उल्लेख भामावावनी के पद्य सख्या 53, 54 और 55 में हुआ है। इसके दूसरे और तीसर पद्य म भामाशाह के जाति, वश परिवार गुरु और धम को विषय म परिचय दिया गया है शेष चौथे से बावनवें पद्य तक भामाशाह के सम्य कर नीति सबधी बातें कही गई हैं। अन्तिम चार पद्यो में रचनाकाल और रचयिता का नाम आदि बातें दी गई हैं।

इसका रचना काल स 1646 आश्विन सुदि 10 दिया है एक अन्य प्रति मे इसका रचनाकाल स 1648 दिया है।

इस कृति को पूणचन्द्र नाहर (कलकत्ता) के सग्रह (गुटका स 96) स प्राप्त कर अगरचद नाहटा न शोधपत्रिका वष 14 अक 2 (अप्रेल 1963) म प्रकाशित कराया था। श्री नाहटा जी को कुछ समय बाद इस कृति की अन्य प्रति भी मिली, इसके आधार पर पूव प्रकाशित भामावावनी के पद्य स 5 28 52 की त्रुटित पक्तियों को पूण किया। बाद मिली इसप्रति मे रचनाकाल छताला क स्थान पर 'अठचाल (1648) दिया है।

इस काव्य की भाषा डिंगल पिंगल मिश्रित राजस्थानी है।

ऊकार सबद आदि धुर एह उपनो।
ब्रह्मा विसन महस शिव सु सकति सपन्नो ॥
पछइ अखर पूछेवि बभि बावन करि आखा।
पछइ वेद व्याकरण लिखत जोतिष सहु लाखा ॥
आरभि सृष्टि पाछइ अवर, मुणिबाजस मन खनि सुने ॥
ऊकार शबद जम उच्चरइ, जिके काम सु प्रसन हुनइ ॥1॥

नमल गच्छ नागोरि नानि, देपाल भ्रिमा गुर।
दया धाम्म दाखिय देव चउवीम तिथक्कर ॥
पिरियावटि पृथिराज साह भारमल्ल सुणिज्ज।
जसवत वाघव जोड करण कलीयाण कहिज्जइ ॥
ताराचद लखमण राम जिम थित थोमण जोडी थयो।
कुल तिलक अमग कावेडिया, भामो उजवालण भयो ॥2॥

मूल पेड भारमल्ल, साख कावेडिया सोहइ ।
पुत्र पौत्र परिवार मउरि, मंझरा दति मोहइ ॥
लखमी नित लखगुणी फालर्या सुइज फूल फल ।
विस्तरियो जसवास, कीर कवि करइ कतूहल ॥
विस्तार घणउ चिहु खंड विचइ, जुगि आलवणि एहजण ।
कलिकाल इयइ पीयल कुलइ, भामउ कलपत्तरु भवण ॥3॥

सिध गोरखा सारिसा जती लखमण भइजेहा ।
सील मरीखी सती सामि चिति एक सनेहा ॥
हणमंत जिसडा हुवे सेवग स्वामि धरमि सुसच्चा ।
परथ जिसा पुरसात करइ न्रम भरइल कच्चा ॥
जमवंत जुधिट्ठल वाचजिम दातारणा हरिचंद सनि ।
एहवा मनिख इल उप्परइ भाम करइ तिणपथ भगति ॥4॥

धन्य जे नर धनवंत धम्म अहनिस मन धारइ ।
धन्य ज नर धनवंत धन सु कुटुंब सधारई ॥
धन्य जे नर धनवंत, ध्यान भगवंत ही ध्याव ।
वले धन्य ते वदा, वित्त वित विलसई पावइ ।
नर धम्मन ध्यान नदान पुन, कहा ने उधापन करइ ॥
तसा मनिख भामउ कहइ भुय भारगि हुइ अवतरइ ॥5॥

पामा आदर करउ न्यिउ मन सुद्ध न्पामा ।
साहमा साहया मिलउ मगे साजण सहासा ॥
भगति करउ भोजन सुतो आपण घर आरइ ।
वारे जे हे वात तह नहवइ जमवारइ ॥
साभलउ सीख सयणा भरा रुडइ मनि पुरउ रला ।
काइ मल करक भामउ कहइ , अहनिस तरवर आवली ॥6॥

आसा उपति अखी आस पूरइ अपरपर ।
आस तणइ सुपसाय याय जीवइ निरधन नर ॥
आहडी करि आस धरच धरि बइठउ आवइ ।
मिरघ चरइ वन मज्झ, मस पुर माहि बिकावई ।
कुण लखइ पढइ हुल्सइ कई सोइ दिन पूरइ मुखी ।
साह कहइ भामा सयणा सरिस इम आसा सपति अखी ॥7॥

इक्ख मत्र पीलियइ ओह रस हाइ अनोपम ।
अगर अगनि घरत, तास अतिवास थियइ निम ॥

चूनउ देतावता वघइ, रग नागर वली ।
घृत प्रमृत हुवे घणा मही जव मथे महेली ।।
चाल रग ग्रने ग्रवरि चढे धोर्या जिमवाणी धरइ ।
न्याय कहइ भाम गुणवत नर ए दुह पाया ही गुण करइ ।।8।।

ईस पात रचउ एम, दान घूमर नव दीघो ।
ए घूमर घाडवी, रूपउ म वावइ रीघो ।।
ए उमया चउ रूप, कृष्ण करि ग्रायो ।
ए कृष्णची कला हृत करि शम्भु हसीयउ ।।
ग्रपना ग्रंभ मा ग्रजनी, ग्रायउ जिणि हनुमत रेजसउ ।
पावरइ पुरुष किण ही कपरि कह भाम ग्रचरज किसउ ।।9।।

उमया ग्रागलि ईम घ्यान नाटारम धरतउ ।
वृन्दावन महि वले, कान्ह पिण यु हिज करतउ ।।
माघ हुव मूरिक्ख महिल कहि सीस मु डायउ ।
भाणमती राउ भाज करे हयवर हासायउ ।।
भाग ही लगइ ग्राभा लगइ जे विरला ते गजीया ।
तिण कहइ भाम ग्रागलि त्रिया, नर कुण कुण नह नच्चिया ।।10।।

ऊठउ उद्यिम करउ, सयरा नर नर हो सूता ।
इण माया मोह मइ किता खू दा लिम खूता ।।
चोर फिरइ चउहटइ, सजन कीज्यो सहराई ।
काया गढ कारिमउ कोट काग़ुरा न खाई ।।
जागसी जिके इम जाजिमइ ते ग्रविचल रवि धू तही ।
भाम कहइ दान तप भाव विण, नर निद्रा साइवउ नहीं ।।11।।

रीम न रीजइ हृदे रीम मन आणउ रुडी ।
रीम किया रथ चढइ जमघर छाडइ जूडी ।।
रीस त्रिया धीरोम, सजण दुरजण हुवे साई ।
रास पडइ कुल रेह, करे नह सगनि कोई ।।
रीस थी नट रूपक न हुइ कुलसत हुव ग्रातमा ।
साह कहइ भाम मयणा मरिम खाति करे भाल्उ लिमा ।।12।।

रीझे नइ बलि राव, श्रृष्ठ वामेन समप्पी ।
रीझ गरुड रूपक, करण तापक वध कप्प ।।
रीझे न रघु राम लक बभीषण साधी ।

कृष्ण रीझवे कला, सहू घर ग्ररजन साधी ॥
सदतार सुयण गीझे सदा सुदिन दान ग्रप्पति सही ।
कवि किसउ दाम ग्रामउ कहइ, नेट सूम रीझइ नही ॥13॥

लिग्मी दी लोभीया, निद्धि दीधी नव नदा ।
विद्या दी निरधना, सल्लि दे दियो समुदा ॥
निकुली रुपत्र निलउ कुरुप पायो कुल्नवती ।
पचायण पुरसात दीघ काया कृपदती ॥
नागरवल्लि निरफल रही, जें फल सूबणी ।
करतार सरिस को न किक्यउ ग्राम कहइ सुयणाह मणी ॥14॥

लग्वमण वाढे लीह सात ग्रागुली लगाडइ ।
ता रावण रुप चुप करि काधे चाडइ ॥
पइला समुदा पार लवधि लकागढ लेतो ।
रामायण करि राम वगजी ल्यावइ वेगो ॥
मामलउ मोग्न एहवी ग्रवणि ग्राम कहे सुराणा मणो ।
लोपीये लीह लछण लगे लीह न लापो कुलतणी ॥15॥

एक वार दातार दान पिण एक न देवे ।
एक वार भूमार लोह सग्रामि न सेवे ।
एक वार कवियार ग्राय गुण भणतउ चुवइ ।
एक वार भूभार मोडि मन पाट्ट मुक्कइ ॥
एक वार दुरी भउ ग्रातनइ कदाचि कुपिती कही ।
साह कहइ ग्राम सुपमा सरिस नर इतना हसियउ नही ॥16॥

एको घण उग्रमइ उगत्र सिगलो जीवाडई ।
एको ऊगइ ग्ररक, तिमर तणा करि ताडइ ॥
एको सीह ग्रवाह नाम जिण गयघड नासइ ।
एको चदण ग्रछे बन परिमल सहु वोसइ ।
कापुरिस घणे कट्न न कयु वयण ग्राम सच्चउ वरइ ।
सुपुत्र एक कुलि सभमइ एक ग्रनेका उदरइ ॥17॥

ग्रोलखि वता वार ग्रभ म करिम गरढाइ ।
ग्राथम जाण ग्रापणो पेड तन त्वच पराई ॥
लख चउरासी लार घुरा की वेला घायउ ।
दुवस सुलस दखेवि, एक मानखा भव ग्रायउ ॥

भाम कहे सोई रस भोग मा,गहिन मम ग्रहि लोग मिसि।
कीधी न टउड इणि भवि कई, भव ग्रनेक भूलउ भमिसि ॥18॥

ग्रालगता ग्रन्तार रहसि करि कदे न रीझइ।
पाणा माहि परवाण, भेद भीतरि नह भीजइ॥
नव कुल ग्रधिकउ नाग, मत्र गारुडा न मानइ।
पीतलि मसि परखियइ वधइ नवि किणही जइग्र॥
साविज ग्रहोनिस दूध पी नीव सोहि मीठो वानइ।
भाम कहइ इता ग्रलगा भला सुयणा ए निगुरा जवइ ॥19॥

ग्राहि तरति देखि बगा काइ तरन्न मयाणउ।
सीह हाक साभले, स्याल किण-काज समाणउ॥
नमी वहती निरखि, वहे काइ सजल सरोवर।
धनवत मुनिरधन ग्रहसि क्यू करइ बराबर॥
जे दियो जिये पायो तीये तणि बात नवि बोललउ।
ग्रापणो सकति ग्रारइ उदिम भाम कहइ कम्विउ मलउ ॥20॥

ग्राघा ग्रजण दोये, पनगले दूध सपाव।
नीच सगने उवन वले ग्रन ऊसर बावे॥
सज्रण सु साफल्ल मित्त दुजण मु मडइ।
नमा स्याल धरमोह छइल हुइ कुलवटि छडइ॥
ग्रहकार करे विप ग्रावरइ निरखइ छाया गति नवी।
साह पहे भाम सयणा सरि एता मूरिख मानवी ॥21॥

कमल क्यार नह कध शृष्टि ब्रह्मादि न होई।
राम शृष्टि जे रचे, हाथ पिण क्यारे होई॥
शिव कीधी हुवे शृष्टि जोनि को मनिष न जामइ।
शकति तणी हुवे शृष्टि श्रीया चढती सग्रामन॥
कीधी न शक्ति न शिवहि की चतुभुज किया न चार मुख।
वृणहार शृष्टि भामउ कहइ पामे को विरलो पुरष ॥22॥

खल नर स्यु मल मट्ट करे स्यु कीज कीजे।
तग रही जय तार तेथ काइ टूट तविज्जे॥
पासे ॥ रहउ प्रेम, मयण मन माहि न मुकाउ।
पडइ डाव पर भवइ चितउजि ध्यानि न चुकउ॥
जालधर झम्परि जाम लो सोल हलता सारीये।
साइ कहे भाम सुयणा सरिस बयरा दूर विहारिये ॥23॥

गलइ राह ले ग्रहइ, सूर महिर बे साहइ ।
सुर नह पाल सक्कइ, नेट न सक्कइ निरवाहइ ॥
जिए हिक कारण कवण, काम पण जिण हिक कीधा ।
पर भुय सहइ सपूर देखि नह पाछा दीधा ॥
मण वाच धम्म वचन वदण, भला होय मुख आखिये ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस, रिण सिर कदे न राखिये ॥24॥

घणउ होइ परि घणउ, घणु धामिज घणेरउ ।
किण ही नावई धाम कहउ जिस कारण केरउ ॥
परथ न कोइ प्रवर परथ न न प्रापण माणइ ।
दया धम्म नह रहइ, जीव सक न जाणइ ॥
नर पच माहि यइसेइ नही प्राचरण कहिजइ इसउ ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस जिसी प्राप मानव जिमउ ॥25॥

नारी चरित नरिंद उदरि पिण गरभ उपज्जइ ।
पवन पेडि पय पनग, भ्राम दधि लहर गिणिज्जइ ॥
इन्द्र घटा ऊनिमे रुदन बाला पिण रीजई ।
भामन को प्राच्यार भग न विस्तारन प्रत ॥
ए वात प्रगम प्रागा लगइ समि सहीया इन्द्रसुर ।
कुण लखइ भेद भामउ कहइ च्यारे दिस बुभत चतुर ॥26॥

चदनि विनगा चील हेम परिमल हुइ हीणउ ।
ससि खडउ सकलक देखि रवि राह दीणउ ॥
सेस तणइ फणि सहस विवस मगचइ ही वसीयउ ।
सलियण घणु समुद, चलू किण हेक न चसियो ॥
जिणहीक पपि चइ पराक्रम, मोटा तोही महएा ।
साह कहइ भाम सयिणा रसि नर भज तिक नरे हुवए ॥27॥

छल सीत छेलने छले बल राधह छलीयो ।
छल करि दारबइ छिद्र कृष्ण प्रहि दाणव कलीयो ॥
भीम सु छल करि भला कीयउ पावन कबीरा ।
छलिया जेण छय्यल तास प्रछे छत्र तेरा ॥
छल थका न को छीपव सक जेम केम जीय तही ।
साह कहै मामो सणा सुणा छलहु बल छिप नही ॥28॥
जस कारण जगदेव कमल दीधउ कंकाली ।
जस कारण बलिराव वचन वामण सु चाली ॥

सवा भार सोवण्ण कञ्ण जस कारिण कपाउ ।
हरिचंद जसरे-हेत, सरव ले रिया समप्पउ ॥
मल भला नरा साह भाम कहे इम करि ज्स लीधाइता ।
जम काज ग्राथि सा जाणज्यो, विलब न कीज्यो विलसता ॥29॥

झड सावण भादवे मेह महि मडइ भाभा ।
नव खडे नेपत्ति, अन ग्रोपति वहे भाभा ॥
राजा परजा राव सहु सुख माणइ साचा ।
विन छहरित विद्रवइ करइ घरि लीलस काचा ॥
मोभाग स्याग भाले सरो हुवे पुण्य प्राच्छित पला ।
वरस रा मास भामउ वदइ बिहु भल्ले वारह भला ॥30॥

नवल त्रिरी मानवी, अने असवार अयाणउ ।
नवल त्रिया नान्हडी काम मारही त्रियाणउ ॥
नवल नेह निम्मियइ पुरप परदेसी पिल्लइ ॥
नवल सीह भर निसठ अडेवन मज्भि इक्ल्लिई ।
हाक्त्याप काजेखि महेवइ, लालइ पालइ लीजियइ ।
साह कहइ भाम एता सरिस, वहु न गाढ न कीजियइ ॥31॥

टींटोडी करि टेक समुद्र सुवयर सभारे ।
चच मरे जल च्यार सोच थइ दूर विडारे ॥
देवि गरुड करि दया जाव मन पखी जाणइ ।
पायउ वाहर आप प्रबल पूरिवा पलाणइ ॥
धनवन समुद जाइ घूजियउ साम्हइ पायनमीयउ सही ।
साइ कहइ भाम आगला ■ गख्या जायइ नहीं ॥32॥

ठग ठाकुर गुरु ठोठ पुहव है हीएा परम्मल ।
मत्री मत्र विहूण छाय घर हर छीलर जल ॥
कर कट त र तुरग अवहि विव वारइ ऊपर ।
छइ भत्र फल वडू मोय वलि सूक सरोवर ॥
असत वेद भासत्त द्विज, नग लाए टूव निवसरा ।
माहु कहे भाम सयणां सरिस एता परिहरियइ परा ॥33॥

डाक डहकइ ताम जाम नीसाण न वाजइ ।
मइगल जा मद भरइ सीहमुख प्राण न भाजइ ॥
तारा तां लग तेज उदे जा भाण न उगइ ।
कायर तां बल करइ पन्यचा याण न पुगइ ॥

सिह् पत्ति राय भारह् सुनन, वयन् भाम इएपरि कहूइ ।
रिण खेत ग्रसत तो लग रहे जा सूर न एको सामहूई ।।34।।

ढलकत नैणा ढाल, मद् घूमत्त महामय ।
बाजइ जउवघवाव, गभे भाजत लक्ख गय ।।
फन सहस फुकार झाट वाहइ विष भाला ।
कान गरुड काढत, पइस जिमजाय पयाला ।।
ब्रह्मण्ड खण्ड इक्वीस बिचि सारीखा ये हवइ सही ।
साह् कहइ भाम सयणा सरिस, इक माटा माटा नही ।।35।।

णिरणउ त^ निम्मियें उदर ऊपना मधो मुक्खि ।
पामिस जे क्यू पार देह् दाखवे नही दुख ।।
करिसि धरमे निकलक घाट मन माहे घडियउ ।
छूटिस भ्रम छोडतइ पासि माया फद पडियउ ।।
धर धध लोभ लामइ धणु, थोमे रहियो मोह् चिति ।
साह् कहइ भाम सयणा सरिस नर निरणउ चितारि निति ।।36।।

ता जाल तुवणी सिला गज बाधन साही ।
पूर नदी परवाह वेग मिण सोध बहाई ।।
पही समुन्^ बिच गई लिखत विधि तिला लागी ।
न्म बोलि ग्राप मुखि एह् गति कोण मभागी ।।
दीजे न दोप ग्रवरा नरा पूरब लिखियो पल्लिये ।
साह् कहइ भाम सयणा सरिस हलवो मय न हल्लिये ।।37।।

थिति कीधी थापणा धरा ग्रावास तणी सुर ।
पनग मामव पेखि सकल थापिया सबे सुर ।।
दस थाप्या दगपाल, भाप बल रहचउ ग्रगाएउ ।
सात समुद नव दीप, मेरु पाखती मडाएउ ।।
चिहू खाण जीव चउरासी लख मनिख जनम उत्तम दियइ ।
साह् कहइ भाम सयणा सरिस, काम एता करता कियइ ।।38।।

दीधा जिण नरिदत सोई नर चावण देसी ।
कीधा जिण एताम क्यु हिक सो चित करेसी ।।
लख चउरासी जीव लेह् जीण मारग लाया ।
कहो नर किम करइ रहइ धन धाम सधाया ।।
सिरो जियो जिको साहेब समय सब घट मज्झि हज्रिसी ।
भाम कहइ रखे ग्रारति भिदा, परमेसर सहूपूरिसी ।।39।।

धवल सबल धर धवल वसु खचवा भर बल ।
जे मेटो ममत तोहा हसतीज बोहल ॥
देखो ए दिस रात प्रबल गज पुरण न पसे ।
गई पेरहु धाम बदल भई ऊजेस बमे ॥
सापुरस ऊन सीगालवो बेहु बराबर हुव बल ।
साह कहै भामसणो सुणो, धन धनए धोरी धवल ॥40॥
नादि नाग दिय नमड हरख पामड अति हीयेइ ।
नाद रंभ मोहती कला अगि चउसठि कीयइ ॥
नाद मृग्ध मोहता, नेह कणि मरण न जाणइ ।
नाद माद जिमलो जीव वालोही जाणई ॥
लिवलीण नाद सोहइ लब्धि प्राप्त प्रराहइ ईसवर ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस, एहनाद अपरम्पार॥41॥
पंच तत्व तइ पिण्ड पच मिली पचउ भारी ।
पंच विषे पमरे सहू भोगवइ ससारी ॥
पचें न्याव अन्याय बूड साचापिण बीजइ ।
पंजी सरिसी पण बहसि किण हालइ बीजइ ॥
पाडवा पचि भीनी पृथ्वी कइऊ गरू अभग कहइ ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस परमेसर पचां महइ ॥42॥
फल्यो अब बहु फाल फाल बबूले फलीयउ ॥
पथी परसी जतउ, विमल छाया कजि बीयउ ॥
बइठो हेठ बबूल मूल कटक बहु मुक्का ।
तरे आयो तलि अब, पवित्र छाया फल पक्का ॥
मन हुआ सुखी सुधिया मिटी लहियउ रलिआवट लरउ ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस, सुगुण निगुण मउ अतरउ ॥43॥
बोल जितो बोलियइ नेट जितरउ निरवहीयइ ।
गरथ न हुव गाठडी गठि जिम रतन सु ग्रहीयइ ॥
आलवइ नही आडि धाग सागर जिम धावइ ।
सकइ मन स्यालधी बिढे जिम सारदो वाधई ॥
सांभलउ सीख एहनो श्रवणि हरखे सुविचारो हियइ ।
साह कहइ भाम सयणा सरिस बहसे पगु न आलियइ ॥44॥
भगवतइ बडी भाति महउ किण बीधी कारणि ।
वनि जिणकहरि वसइ वसइ तिणही वनि वारणि ॥
वारणि लखियवि थाइ सक इक दाम न सरुभइ ।

पुरसातन प्रति प्रवल, निम्है ग्रहस्हइजु निमइ ।।
साह कहइ भाम मिधुर मदल करइ जु कनला न्हई ।
लामिवा मोल लेखइ नहीं मोह पराभव जई सहिं ।।45।।
मोटउ जे मेरुहर मेरु वसुधा पर मुणियइ ।
थमुह धणइ विसतारि, सात समुदा विवि मुणीयद ।।
सात समुद घर सहित मुजे वो रभ बीय भारी ।
को रभ कपिल जराह, सहु श्रगाल साधारी ।।
साह कहइ भाम ए भाररुहु, सेरा सासा भालयउसरब ।
हर हीय सेसा सो हार हुम गरवा सन कहुउ गरव।।46।।
जल विण त्रिवा न जाय ग्रन्न विण जिपति न ईखइ ।
ज्ञान ध्यान गम प्रगम, सगुरु विण कोइ न सीखइ ।।
प्रघग थाग प्रासग्इ प्रवण विण पार न पावई ।
मोहइ मह मेदनी प्रमल विण इन्द्र न प्रावइ ।।
धामियइ जम धन कारणः जिम धन कारणि धानियइ ।
साह कहइ भाम सायणा सारिसा प्रभुविण मुगति न पामियइ ।।47।।
रावण रहायो नही सीसा दस बीस भुग्रा स्यु ।
चउदह चउकडि लगई त्रिपुर किहि राज करइ स्यु ।।
लक जिसा गढ लहइ समुद्र सारिखा सहाई ।
कु भकरण सारिखा मुज रख पालण भाई ।।
असुरा सुरा प्रणग जिमइ छेह नवो प्राये छत ।
भाम कहै एक सिर विहू मुते मूरख जुग जोवण मते ।।48।।
लालच म कन्ज लोभ लोभ कीधा आ कयू लाभइ ।
प्र ब धरणि जे मछइ प्र वताइ वेरसइ प्राभइ ।।
तिम पूरख प्रवतारि जीव मन माहे जाणइ ।
प्रहनिस जे प्राफलन तिको तिम मिल्सी टाणइ ।।
पर निंदा द्रान्य परि हरिवरा भ्रम हल मनसा धरे ।
साह कहै भाम सायणा सारिम कोई मत लाल्च करे ।।49।।
वरपा रित वरसता सहू आवा साउ सूकइ ।
वसत काउ वजियड कहर कू पल नह मूकइ ।।
वेसा नर वाय वधइ एम दीपक प्रउभायइ ।
च्यारुवन त चरइ प्र ठ कटालउ खायइ ।।
सुर मध्य समुद्र पीधउ सुरा शिव तहि विष पीधउ सही ।
कुण दीयइ सीख मामउ कहइ, नर सहजा पारउण नही ।।50।।

सिद्ध साधु साधवत्र, व्रती जोगी सन्यासी ।
सोभा सतावरी विप्र षट करम निवासी ॥
ग्रडसठि तीरथ ग्रहइ, जात्र जमाता जायइ ।
सुमनि थान सग्रहु, नदी नव सय जल न्हायइ ॥
जल ग्रोस विंद जिम जाइयइ थडीया कजि मरियउ घडउ ।
वसि करउ पच भामउ कइ ज्यू धणी बताऊ दूकडउ ॥51॥

वाग्नो सरचउ खरो, ग्राथि ग्रापणी उपाई ।
वुरे रखे वीमिस्यो भूमि ऊगरइ भलाई ॥
धानारउ हरिचद नद वीसल वीसारउ ।
करण भाज वा कम एम ग्रखियात उवारु ॥
लग कोई साथि न ले गयउ ले गज्या समवद लीयइ ।
माइ कहइ भाम सयणा सरिस, कला रहइ रूडा कियइ ॥52॥

सवत सालह समइ वरस छताला वरषे ।
भासू सुदि ग्रपूण्य दमिम दिन मुहरत देख ॥
सुभ वला सुभ नक्षत्र विदुर थायवक वखाणी ।
सुसवा जिसा ससारि सयल मसारि मुहाणी ॥
मो धीघ भेट साह भामरयु मनि मगण सज्जन मही ।
ववि मुखे मुखे श्रीडा वरा बहु विरतरो ए वावना ॥53॥

हाथ थाल गुण हुवइ माहि मसार हू मुती ।
कवित्त पुहप सोई कमल सूत्र असुमाल सजुती ॥
कूकू चदण कठिन उतलि सरसति ले ग्रावे ।
नयणे सा निरखेवि वयण मइ ग्रमी वाधाव ॥
भारमल्ल सुनन सु भेट अस हूती नवनिध लाभ हुय ।
ग्रासीस विदुर इम उच्चरइ एह तिलक करि भाम तुम ॥54॥

लख मय नग्र त्रै लीय दूनी ससि तपन दिवायर ।
पवन नीर परवेस सलिल नवि छडइ सायर ॥
ग्रस्ट कला सु ग्रहिग गग परवाहु मर गिर ।
सपत दीप छिथमी मत जा रहइ ग्ररइ गिर ॥
भारमल्ल गुन नुवम भेदगर भणीय भल दातार सुग्र ।
ग्रासीस विदुर इम उच्चरइ सो भामा करि राज सुग्र ॥55॥
दूजा नइ दूहडउ रिहि वि ग्रम्नाव धहुज्जइ ।
रिणिहिम माहि कवित गीत विचिहिय गाउज्जइ ॥

छन्द रिजिहिक छन्, जिको जेहवा छल जागइ ।
तिण न तेहवी भेट मांप ला कीजइ मागइ ॥
भारम्मल सुतन भाजण दलिद दियो नाम दाता दुजे ।
बावनी तणा मोटा विम्द, भाम तोहि छाजइ भुजे ॥56॥

इति श्री भामाशाह बावनी सपूण संवत् 1731 वर्षे श्रावण सुदि 11 दिन लिपिकृता श्री मडता नगरे महाराजाधिराज महाराणा श्रीमत् श्री जसवतसिंह विजय राज्यें ।

शुभ भवतु सवन ॥

'खुमाणरासो' में वर्णित भामाशाह के अहमदाबाद-अभियान का वर्णन

खुमाण रासो' की रचना जन मुनि दौलतविजय ने की थी। यह श्वेताम्बर जन तपागच्छीय साधु शान्तिविजय का शिष्य था। इसका जन्म का नाम दलपत था। इस ग्रन्थ की एकमात्र प्रति भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना म सग्रहित है। यह प्रति अन्त में त्रुटित है, अत रचनाकाल ज्ञात नहीं होता। ग्रन्थ के निर्देशानुसार महाराणा सग्रामसिंह द्वितीय (राज्य काल स 1767 से 1790)के काल मे इसकी रचना कभी हुई थी। इस ग्रन्थ मे बप्परावल स महाराणा राजसिंह प्रथम तक के मेवाड के महाराणाओं का वर्णन है। मेवाड के महाराणाओं की खुमाण उपाधि होने से इस ग्रन्थ का नाम खुमाण रासो' रखा गया प्रतीत होता है। इसम महाराणा प्रतापसिंह और महाराणा अमरसिंह के प्रसग म भामाशाह का भी वर्णन हुआ है। यहा अमरसिंह के काल म भामाशाह द्वारा अहमदाबाद अभियान का विवरण उद्धृत किया जा रहा है।

अमर तणो मत्रीश वर भुजबल भामो साह ।
बुद्धिवंत नें साम धम वाटक दूठ दुवाह ॥3498॥
गयो साह गुज्जर धरा सहरें अेमदाबाद ।
दुस्सासण दूकान परि साजस करि सवाद ॥3499॥
बेठो सेठ मणी धणी गुमर कर गादीह ।
बुद्धि अती भ्रो साप सु, साहजी सावन्दीह ॥3500॥
साह करो खत अमशिरें दीजें अमनें दाम ।
ब्याज वधोतर दीजीइ राखो माहरी माम ॥3501॥
खजीनें खाली थयाह मज्झ विखो मेवाड ।
अमर राण अम सिर धणी, अनडा विचें उनाड ॥3502॥

दाम सहू देस्या पुरा, गिणस्यां तुम उपगार ।
सरची सूटी राण री, वणियो इस्यो विचार ॥35003॥
ब्याजें काई वणी नहि व्यवहारे व्यापार ।
करी भ्राल भामा तणी, कांणातर निरधार ॥3504॥
साह भामइसो वें कहें तुम किण कीनी भ्रांण ।
चाकर भामा साहरो तिण री राखु भ्राण ॥3505॥
साह वसें मेवाड़ घर कावेड़्यो कुलभाण ।
भामो भारहमल सणो राण तणो परधान ॥3506॥
घमनें साह न भोलसो, साहु भांमो साह ।
हुंडी भ्रसवर मीढीइ, भायो हु इण ठाह ॥3507॥
गुमर छाड गुमाशतें साह नें करी सलाम ।
सहाजी भामो सिरधणी हु भोलग गुमाम ॥3508॥
मताए महाराज री, मु साहिब हु दाम ।
भ्राप इहा भाया भले, विलसा रिद्ध विलास ॥3509॥
तुरत वाणोतर तेडियो जपे भामोमाह ।
करो परज इण वार मे, मन उपजें ऊमाह ॥3510॥
भ्रत घन भ बर जोड़ई, बार वरस लग तेह ।
ले भ्रायो मुझ परचको तुम चित भ्रावें जेह ॥3511॥
गयवर ने गूहर सुरग, पाखर बखब पनाण ।
तग तोबरा तीडरा, सा न सबल सयाण ॥3512॥
कप्पड़ पीपा कापडा लीधो धन दो कोड़ ।
साथ समान कियो सहू नमाकीया सजोड़ ॥3513॥
भ्रमदाबाद सु भामासाह भ्रमर पास भ्रायो उछाह ।
भ्रसी सरस सामें भ्रसवार भ्राए बाए भ त न पार ॥3514॥
भ्रनर राणयी कियो जुहार मिलिया साह थकी जुहार ।
हिंमत पकडि पकडो तरवार ऊठावो थाणा इणवार ॥3515॥
विपो भयो बारे बरस रण रसिया रजपूत ।
भ्रमर सुहड चित इस्यो, ए भावो रण धूत ॥3516॥

★★

इतिहासकारो और साहित्यकारो की दृष्टि मे भामाशाह

कविराजा श्यामलदास

भामाशाह बडी जुरअत का आदमी था, महाराणा प्रताप सिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के 2।। तथा 3 वर्ष तक प्रधान रहा, इसने उपर लिखी हुई बडी-बडी लडाईयो मे हजारो आदमियो का खर्च चलाया। यह नामी प्रधान सम्वत १६५६ माघ शुक्ल ११ (हिज्री १००८ ता ६ रजब=ई १६०० ता २७ जन्युअरी) को ५१ वर्ष ७ महीने की उम्र मे परलोक को सिधाया, इसका जन्म सम्वत १६०४ आषाढ शुक्ल १० (हिजी ९५४ ता ८ जमादियुल अव्वल=ई १५४७ ता २८ जून) सोमवार को हुआ था, इसने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री को एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमे मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है, जिस वक्त तकलीफ हो, यह बही उन (महाराणा) की नजर करना। यह खैरख्वाह प्रधान इस बही के लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षो तक खर्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधाना दिया था, वह वह भी खैरख्वाह आदमी था, लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था।

जब कुवर कर्णसिंह बादशाह जहागीर के पास अजमेर गये, तब शाह जीवराज भी साथ था। जीवराज के पीछे भी महाराणा कर्णसिंह ने उसके बेटे अक्षयराज का प्रधाना दिया। इसके घर मे तीन पुश्त तक तीन महाराणाओ का प्रधाना रहा। भामाशाह के बाप भारमल्ल का महाराणा सागा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी जो पीछे सूरजमल्ल हाडा बूदी वाले का मिली इस पर भी किले रणथम्भोर मे एतिबारी नौकरी और कुल कारबार भारमल्ल के ही हाथ रहा था। इस खैरख्वाह घराने के आदमी कुल अच्छे ही थे, परन्तु भामाशाह के नाम से ओसवाल जाति के हर एक महाजन को घमड होता है, जिस तरह वस्तपाल, तेजपाल जो अणहलवाडे के सोलखी राजाओ के प्रधान थे और जिन्होने आबू पर जैन के मन्दिर बनवाये, वैसा ही पराक्रमी और नामी भामाशाह का भी जानना

चाहिये, जिसको नौकरी के एवज मे वर्तमान समय तक उसको औलाद के कावडिये महाजन महाजनो के बड जमा में सब । पहिले पेशानो पर तिलक पाते हैं, अब उन लोगो मे कोई मशहूर आदमी नही रहा, तो भी भामाशाह का नाम कुल मुल्क मे मशहूर है । '

(वीरविनोद, भाग 2, पृ 251 252)

डॉ रघुवीरसिंह

"मेवाड राज्य के कोष तथा आर्थिक मामलो का कार्यभार प्रताप के राज्यारोहण के समय से ही भामाशाह के हाथ मे रहा । अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महासहाणी के अधीन थे । प्रताप द्वारा दिये गये ताम्रपत्रो आदि मे सन् 1577 के उत्तरार्द्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है । सन् 1578 मे रामा महासहाणी के स्थान पर भामाशाह को मेवाड राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया । प्रताप के देहावसान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा । भामाशाह ने जीवन भर अपने कर्तव्य को बडी योग्यता निष्ठा और तत्परता के साथ निभाया, अपनी अनन्य स्वामिभक्ति तथा दूरदर्शितापूर्ण अच्छे आर्थिक प्रबन्ध द्वारा उसने प्रताप की सफलता मे महत्वपूर्ण योग दिया ।"

("राणा प्रताप' पृ 60)

DR KALIKA RANJAN QANUNGO

'The name of Bhama Shah is remembered throughout Rajputana with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap Bhama Shah was neither Netaji Palkar nor Nana Fadnav s 1

1 Netaji Palkar was a Maratha patriot and trusted lieutenant of Shivaji Aurangzib tempted him out of his loyalty and religion and made hime a muslim

Nana Fadanvis otherwise a great diplomat and patriot of Maharashtra secreted public money and left behind a book to his family giving particulars of his buried wealth

(Studies in Rajput History p 52)

रामवल्लभ सोमानी

'भामाशाह की सेवाओ से मेवाड की ही रक्षा नही हुई अपितु समस्त हिन्दू जाति का महान् उपकार हुआ । अगर यथासमय धन की

सहायता भामाशाह परिवार नहीं देता तो संभवत प्रताप मेवाड छोडकर चले जाते। यहा का इतिहास कुछ और ही होता। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ-साथ भामा शाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाए सदव गाई जाती रहगी।

(ऐतिहासिक शोध सग्रह पृ 71)

भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र

जा धन के हित नारि तजै पति, पूत तजै पितु शीलहिं सोई।
भाई सों भाई लर रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई।
ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न, दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ अर्थ्य तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई।।"

कवि लोचनप्रसाद पाण्डेय

(1)

राणा मेवाड-स्वामी अहह! कर रहे आज हैं देश त्याग
वश ख्याति प्रतिष्ठा हित दुख वन के ले रहे सानुराग।'
पाते ही वृद्ध मंत्री वह वणिक अहो! वृत्त ऐसा दुरन्त
घोडे प हो सवार प्रखर गति चला शाहभामा तुरन्त।।

(2)

जाते जात उठे थे वणिक हृदय म आपही भाव नाना—
क्यो जात हैं कहाँ हो विवश? पड गये लोभ में क्या न राणा!'
प्राण तो है न होगी इस तरह उ हे हीनता स विरक्ति।
है अर्थों की प्रतिष्ठा अविचल उनकी आत्मना आत्मशक्ति।।

(3)

हा! अर्थाभाव ही के हित नृप तजना चाहते हैं स्वदेश।
ऐसा मने किसी की उस दिन कहना था सुना हाय क्लेश!
हिंदू सूर्य प्रतापी प्रखरतर कहाँ, शक्तिशाली प्रताप?
पीडा व्रीडा प्रपूर्ण प्रबल अति कहाँ नि द्य अर्थानताप।।

(4)

ऐसी ही अवस्था इस समय हुई प्राप्त आगे कदापि,
तो तू स्वामाभिनी रे! वणिक कृपणता चित्त लाना न पापी।।
हे हे मेवाड माता! बल अनुपम तू दे मुझे आज ऐसा,
सेवा म त्याग युक्त प्रकट कर सकू बार सत्पुत्र जसा।।

(5)

जो तू प्राधीन होवे यवन नृपति के क्लेश नाना सहेगी
तो क्या प्राधीनता का अनल न हमको नित्य ही माँ! दहेगी?
खोके स्वातन्त्र्य रूपी मणि हम दुःख के घोर काली निशा में
जावेंगे क्या न हा! हा! तज कुल गरिमा, मृत्यु ही की दिशा में ।।

(6)

जो श्री मेवाड़ भू के सुचितर कुल के गर्व का कीर्ति केतु
जावेगा टूट तो क्या फिर धन जन तू सोच हो लाभ हेतु।
ले लेंगे क्रूरता से हर कर रिपु जो सौख्य की वस्तु सारी
मारे मारे फिरेंगे तब हम मधु की मक्खिका ज्यों दुखारी ।।

(7)

जावेगी मातृ भू जो निकल कर सभी हाथ से हा! हमारे
तो क्या निर्जीव प्राणी हम सब हैं व्यर्थ ही प्राण धारे?
ऐसा होने न देंगे प्रण कर अपने प्राण का दान देके,
होंगे सबो चुकाते अमर निहित हो युद्ध में कीर्ति लेके ।।

(8)

आवेगा काम तेरा कब यह धन हा! रे! कृतघ्नी कठोर,
भामा! धिक्कार लाखों तव धन बल को निष्ठुर नीच घोर!'
भामा ने यों स्वयं ही कटु वचन कहे खेद पाके अपार
आँखों से छूटने त्यों सहज! फिर लगी रक्त पूर्णाश्रुधार ।।

(9)

स्वामी को शीघ्रता से वन-वन फिरता ढूँढता शाह भामा
पाता अत्यन्त पीड़ा लख गति नृप के कर्म की हाय! वामा।
सिन्धु प्रान्तस्थ सीमा पर जब पहुँचा तो यहाँ दूर ही से
देखा कौटुम्बियों के युत नरवर को मिथ्या त्याग जाते से ।।

(10)

धाड़े में भूमि पै आ धर कर हृय की राम मंत्री चला यों
माना मेवाड़ भू ने स्वसुत निकट है दूत भेजा भला ज्यों।
जाके मेवाड़ मौर प्रभुवर पद पै शीश मंत्री झुकाके—
बोला यों नम्रता से नयन युगल से आँस आँसू बहा के—

(11)

हो जावेगी अनाथा प्रभुवर! जननी जन्म भूमि प्रसिद्ध
त्यागेंगे आप यों जो कुसमय उसको हो विपत्यामें न विद्ध!!

राणा के चित्त म, यो विषम विषमयी, क्यों हुई आत्म ग्लानी ?
घेरे संसार को भा जलद पटल वा सूय की कौन हानी ?

(12)

योद्धा थ साथ मे थे धन जन, न रहा साधना का अभाव
मत्री ! मैंने दिखाये तब तक आपने क्षात्र शक्ति प्रभाव
हो कैसे भोजनों का दुख जब हम को सालता रोज हाय।
रक्षा वंश प्रतिष्ठा सब अब अपनी है कहो, क्या उपाय ?

(13)

रोते हैं राजपुत्र क्षुधित दुखित हो, अम्ब की भोह देख।
छाती जाती फटी है तब इस शठ की हाय ! रे कम रेख !!
ऐसी दीन दशा म कब तक रिपु से युद्ध हा हा ! करूगा ?
क्या श्री स्वाधीनता को मकबर कर म सौंप स्वाहा करूगा ?

(14)

पीछे पीछे लगा ही अहह ! फिर रही शत्रु सेना हमारे।
धीरे धीरे कुटुम्बी सुभट हत हुये युद्ध मे हाय सारे ॥
सामग्री एक भा है समर हित नहीं पास मे और शेष,
भागी भागी प्रजा भी समय फिर रही भोगता घोर क्लेश ।।

(15)

हे मत्री ! सामना मैं कर अब सकता शत्रुओं का न और
जाता हू मात्र भू को तजकर इस स दु ख म अन्य ठौर।
मेरी प्यारी प्रजा को अमित दु ख मिले नित्य मेरे निमित्त,
तौभी स्वातन्त्र्यरूपी वह अहह नहा पा सकी श्रेष्ठ वित्त ।।

(16)

क्या ही निश्चिन्तता स अब तज रिपु का सिन्धु के पार जाके
है हे मत्री ! रहू गा सुख सहित नया रक्षित स्थान पाके।
मेवाडोद्धार हेतु प्रमुदित करके राज्य की स्थापना म
भीलों की साथ लू गा अगणित धन के साथ ही मे बना मैं ॥

(17)

दीना पाहा निराशा भरित वचन य भूप के वृद्ध मत्री
शोकात हो गया हा ! श्रवण कर गई टूटसी प्राण-तन्त्री।
धरा म वृद्ध मत्री गिरवर नप के कृश छिन्न लता स
श्री राणा स लगा यो तब फिर करन प्राथना नम्रता से ॥

(18)

स्वामी हो आप नामी इस अनचर की देह के अन्नदाता,
खाया है अन्न मैंने तव अब तक हूं आपका अन्न खाता,
है द्वारा देह की जो रुधिर, वह बना अन्न से आप ही के,
स्वामी हो आप मेरे तन, धन, जन के भूमि सभी के ॥

(19)

मेरा सर्वस्व ही है तन सहित प्रभो ! भूपते ! आपका ही
भागी हूंगा न दूं जो तन धन नृप के हेतु मैं पाप का ही।
जूता मैं श्री पदों के हित यदि बनवा देह की चम से दूं
तो भी है हाय ! थोड़ा यदि तव ऋण को मूढ़ मैं घम से दूं ॥

(20)

है ही क्या शक्ति ऐसी प्रभुवर ! मुझमें दे सकूं जो सहाय !
सिंहों की गीदड़ों से कब विपद घटी बोलिये हाय ! हाय !
तो भी है पास मेरे कुछ धन जिसको सौंपता आपको मैं
पावे सो भूप ! लौटे नहीं सह सकता मातृ भू ताप को मैं ॥

(21)

कीजे रक्षा प्रजा की इस धन बल से देश की जाति की भी
कीजे हे भूप ! रक्षा इस धन बल से वंश की ख्याति की भी।
होगी सर्वेश को जो अतुलित करुणा बात सारी बनेगी
जीतेंगे शत्रुओं को विषम विपद में शीघ्र सारी कटेगी ॥

(22)

जो आया काम स्वामी ! यह धन, अपने देश रक्षा हिताय
हो जाऊंगा सवश प्रभुवर ! ऋण से छूट के मैं कृताय ॥
हूं राणा ! वृद्ध तो भी यदि बल रहता दृढ़ होता न जो मैं
तो लेके खड्ग जाता समर हित जहाँ शत्रु होते वहीं मैं ॥

(23)

मंत्री हूं वृद्ध हूं मैं अनहित न कभी मैं करूंगा नरेश !
होगा कष्ट प्रजा का हरकर रिपु न त्यागना व्यर्थ देश।
हे स्वामी ! लौटियेगा पितरगण का सोचक स्वाभिमान
जान दूंगा हहा ! मैं प्रभुवर ! न कभी आपका अन्य स्थान ॥

(24)

देखो तो जन्म भू है रुदन कर रही हा ! हत मान होके
शक्ति, श्री बुद्धि विद्या रहित वह हुई आपको आज खोके

माना तो दुख रूपी अगम जलधि में मूर्छिता छोड जाना,
जाना मैंने यही है ऋण इस युग म पूर्णता से चुकाना "॥

(25)

बोले यो बात सारी सुन सचिव की वीर श्रीमान् राणा
हा ! मा मेवाड भूमे ! मृतक समझ के तू मुझे भूल जाना ।
जो नाना आपदाएं नीत नई तुझ प एक से एक आई,
मेरी ही मूर्खता से अहह ! सकल हो रे गई हैं बुलाई "।

(26)

मंत्री की स्वामीभक्ति प्रकट लख तथा देख के आत्म त्याग
बोले राणा प्रतापी वचन नर पुन तुष्ट हो सानुराग ।
मंत्री पा हो गया म सुखसुर तुमसा आज भामा ! कृतार्थ,
भेजा क्या मातृ भू ने रचकर तुमको दश रक्षा हितार्थ ॥

(27)

पूजा के योग्य तू है, बणिक सजिव श्रीशक्ति की मूर्ति तू है ॥
है भामा ! धन्य तेरा वह धन जननी भक्ति की मूर्ति तू है ॥
तुझ म स्वामी भक्ति चतुर मंत्री वर आत्मा त्यागी वीर ।
भारत म क्या दुलभ है इस वसुधा मे भी धार्मिक धीर ।

('प्रभा 5 जून 1913 ई खण्डवा)

3 सहायक ग्रन्थसूची

1 ओझा डॉ गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द 1 2 अजमेर, वि स 1988

2 कविराव मोहनसिंह और सावलदान आशिया (सम्पा) 'प्राचीन राजस्थानी गीत भाग 11, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर

3 कविराजा श्यामलदास वीरविनोद, उदयपुर 1890

4 गहलोत जगदीशसिंह राजपूताने का इतिहास पहला भाग हिन्दी साहित्य मंदिर जोधपुर 1937

5 गोयलीय अयोध्याप्रसाद राजपूताने के जनवीर हिन्दीविद्यामन्दिर पहाडी धीरज देहली 1933

6 दुगड बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नाकर भाग 1 तरंग 2 मेवाड का इतिहास उदयपुर, 1913

7 पालीवाल, डॉ देवीलाल (सम्पा), महाराणा प्रताप स्मृतिग्रंथ,' साहित्य सस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर 1969

8 पालीवाल, डॉ देवीलाल, प्राचीन डिंगल काव्य म महाराणा प्रताप ' भूमिका, अरुणिमा प्रकाशन, उदयपुर

9 भटनागर, डॉ राजेन्द्रप्रकाश,(सम्पा), अमरकाव्यम्', उदयपुर,

10 भट्ट, रणछोड, 'राजप्रशस्ति महाकाव्यम्'(सम्पा डा मोतीलाल मेनारिया) साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1973

11 भण्डारी, सुखसम्पतराज एव अन्य ओसवाल जाति का इतिहास अग्रवाल पब्लिशिंग हाऊस, भानपुरा, इन्दौर, 1934

12 भानावत डॉ नरेन्द्र एव सोगानी डा कमलचन्द,(सम्पा) जन सस्कृति और राजस्थान, जयपुर 1975

13 डा रघुबीरसिंह महाराणा प्रताप , प्रकाशन विभाग, सूचना एव प्रसारण मत्रालय भारतसरकार, पटियाला हाऊस नई दिल्ली

14 शर्मा डॉ गोपीनाथ 'राजस्थान का इतिहास' प्रथम भाग शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1973

15 ' ' मेवाड मुगल सम्बन्ध' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1976

16 " " " 'राजस्थान के इतिहास के स्रोत पुरातत्व भाग 1 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1973

17 श्रीवास्तव, डॉ आशीर्वादीलाल अकबर महान् भाग 1 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, 1967

18 सरकार जदुनाथ भारत का स य इतिहास मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1971

19 सुधेश ,ध द्रकुमार जन अमाण ह ऐतिहासिक नाटक प्रथमावृत्ति ना तेद म प्र

20 सोमानी, रामवल्लभ ऐतिहासिक शोध सग्रह हिन्दी साहित्य मन्दिर जोधपुर 1960

21 हेमरतन गोरा पद्मिनी कथा चऊपई राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

पत्र-पत्रिकाए

1 त्यागभूमि — वर्ष 3 अक 4

2 मरुभारती — (पिलानी) वष 15 अक 3 (अक्टूबर 1967)।

3 वीरशासन — 1 दिस 1952 16 दिसम्बर 1952 1 जनवरी 1953

4 शोधपत्रिका — (उदयपुर) वष 14 अक 1 वष 14 अक 2,
15 वष अक 1, वष 19 अक 4

5 हिदुससार — दीपावली, अक कार्तिक कृ 30 स 1982 वि

ENGLISH

1 Beveridge Henry— English Translation Akabar Nama Vol 2 3 Asiatic Society of Bengal, Calcutta

2 David Major Alfred— Indian Art of war Atmaram and sons Delhi

3 Qanungo Dr Kalika Ranjan — Studies in Rajput History (S Chand & Co Fountain Delhi 1959)

4 Sarakar Jadunath— Military History of India

5 Sharma Dr G N — Social Life in Medieval Rajasthan 1500 1800 A D (Lakshmi Narain Agarwal Agra 1968)

6 Somani Ramvallabh— History of Mewar part 1 (Jaipur 1976)

7 Tod Lieut Col James — Annals and Antiquities of Rajasthan Vol I (m/s Routledge & Kegan Paul Ltd London Reprinted in India boy M N Publishers New Delhi 1983)



मेवाड़ मे जैनधर्म का योगदान

जनधम बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। यद्यपि कभी यह सम्पूण रतवष मे फैल चुका था परतु कालान्तर मे इसका विशेष प्रचार प्रसार श्चिमी भारत में विशेषकर राजस्थान गुजरात महाराष्ट्र कर्नाटक और पजाब रहा। जनधम के सिद्धा ता और शिक्षाओ ने भारतीय समाज को बहुत भावित किया। इस धम म स्त्रियो के सम्मान को बढाया और उनको भी क्ति की अधिकारिणी माना। भारत मे प्रचलित मासाहार की बहुलता का नधम के विकास के कारण भारी धक्का लगा और यहा अधिकाश लोग पुन ाकाहारी बने। यद्यपि जिन लोगो ने जैनधम अगीकार नही किया परतु न्होंने भी मासाहार के दुगुण और शाकाहार के सद्गुण को वज्ञानिकरीत्या समझा और शाकाहार को अपनाया। इसी स भारत आज शाकाहार प्रधान देश माना जाता है। शूद्रो का समाज मे बहुत निम्न स्थान था। शूद्रों के उद्धार के लिए जनधम में समानता को मानते हुए जाति-पाति के भेद-भाव को समाप्त किया गया। जनधम म पुरुषाथ को प्रधानता दी गई है और इसी के द्वारा मुक्ति का माग प्रशस्त किया गया है। धम-पालन मे भी कम को प्रधानता दी जाती है। कहा जाता है— कम्म सूरा सो धम्म सूरा।

जनधम का इस देश म ही स्वतत्र रूप से विभिन्न दर्शनो और धर्मों की भाति उद्भव और विकास हुआ था। इसलिए जनधम म प्रचलित समस्त मान्यताए इसी देश की देन हैं किसी अन्य देश की नहीं जो पारम्परिक है।

राजस्थान म प्रारम्भ स ही जनधम का फलाव हुआ था। चितौड गढ के पास माध्यमिका (प्राकृत रूप– मज्झिमिका) नामक नगर जो अब नगरी नाम स प्रसिद्ध है प्राचीन काल म जनो का भी उच्च केन्द्र था। कहा जाता है कि मथुरा म हुई सगिति मे भाग लेने के लिए मज्झिमिका स भी जनाचाय गये थे। मज्झिमिका के उजड जाने के बाद चितौडगढ जनधम के दिगम्बर एव श्वेताम्बर मतो का प्रमुख स्थान बना। मेवाड की प्राचीन राजधानी नागदा और आहाड भी जनधम के अच्छे केन्द्र थे। मारवाड मे भीनमाल जालोर नाडोल नाडलाई, आबू जसलमेर आदि जनधम के प्राचीन केन्द्र रहे।

जनधम के फलन फूलन की दृष्टि से मेवाड का नाम सर्वोपरि है। यहा पर जनधम ने समाज के हर प्रकार के क्षेत्र म विशिष्ट पुरुषो को जन्म दिया। राजनीतिक, सनिक और प्रशासनिक क्षेत्र मे हमीर के काल मे जाल महता राणा लाखा का मत्री नवलखा गोत्र का रामदेव कुभा के काल म

बेला भंडारी गुणराज जीजा बघेरवाल धरणाक शाह सांगा द्वारा नियुक्त रणथम्भोर का किलेदार भारमल्ल जो राणा उदयसिंह के काल में उच्चपद पर रहा, राणा रतनसिंह के काल में उसका मंत्री कर्माशाह राणा प्रतापसिंह का मंत्री भामाशाह राणा अमरसिंह का मंत्री जीवाशाह राणा कर्णसिंह का मंत्री अक्षयराज राणा राजसिंह का मंत्री दयालशाह राणा भीमसिंह का मंत्री सोमदास गांधी मेहता मालदास मेहता देवीचन्द आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने देशभक्ति और स्वामिभक्ति से इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। चित्तौड़ का राज्य पुनः प्राप्त करने में जाल मेहता से हमीर को बड़ी सहायता मिली थी। राणा सांगा के समय तोलाशाह का वस्त्र का व्यापार चीन और सुदूर देशों से चलता था। उदयसिंह को चित्तौड़ पर आधिपत्य कराने में चील मेहता ने योगदान दिया था। बीकानेर के कर्मचन्द बच्छावत मेहता के वंश में, जो भामाशाह की पुत्री जगीसा बाई से चला, अगरचन्द मेहता को मांडलगढ़ की किलेदारी सौंपी गयी थी।

जैनवीरों की कई स्त्रियों ने जौहर में अपने प्राणों की आहूती दी कई सती हुई और कुछ युद्ध में भी लड़ी। दयालशाह की पत्नी पाटनदे ने पति के साथ रहकर युद्ध में वीरता दिखाई थी और अन्त में मुसलमानों के हाथ में न पड़े इस विचार से दयालशाह अपनी स्त्री को मार कर लौट आया। इसी प्रकार जैनधर्मानुयायियों ने मेवाड़ में धर्म संस्कृति समाज ललित कलाओं स्थापत्य मूर्ति चित्रकला, संगीत आदि और साहित्य के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान किया। आहाड़ में लिखित जैन ग्रंथों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों पर मेवाड़ चित्रकला के सबसे पुराने चित्रांकन मिलते हैं जिससे इस पृथक शैली के विकास का पता चलता है। ये ग्रंथ 13 वीं शती के लिखे हैं। श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णी (सं 1309) की यहां पर चित्रित प्रति आजकल बोस्टन संग्रहालय (अमेरिका) में सुरक्षित है।

प्रायः इन जैनधर्मावलम्बियों ने उदार धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया और मेवाड़ के गौरव सम्मान और प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने में उपयोगी भूमिका अदा की।

जैनधर्म के कुछ सम्प्रदायों जैसे तपागच्छ तेरापंथ आदि की स्थापना भी मेवाड़ में हुई थी।

अधिकांश जैन मूल में राजपूत या क्षत्रिय वंशी थे। जैनों के गोत्र एवं जातियां ज्यादातर राजपूतों के समान पायी जाती हैं मेवाड़ में जैनधर्मी प्रायः मंत्री प्रधान किलेदार फौज के अधिपति (सेनापति) आदि पदों पर रहे



ञ्द्रप्रकाश भटनागर

सितम्बर 1942

हानजी का हाटा, उदयपुर

ए (इतिहास),
च डी (इतिहास)
ाचाय (स्वर्ण पदक प्राप्त),
ा ए (जाम),
ा डी (आयुर्वेद)

र राजकीय आयुर्वेद महा
ाय उदयपुर (राजस्थान)

ग्केंपुर का इतिहास,
ा आयुर्वेद का इतिहास
भिनव स्त्रीरोगविज्ञान,
ानव मानस रोगविज्ञान,
ायुर्वेद ग्र थ कल्याणकारक-
ोयन आदि 15 से अधिक
300 से अधिक लेख एव
प्रकाशित ।